# इकाई 4

# निबंध निकष

---

## इकाई की रूपरेखा


4.0 परिचय

4.1 इकाई के उद्देश्य

4.2 साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है (श्री बालकृष्ण भट्ट)

- 4.2.1 व्याख्या खंड
- 4.2.3 विशेषताएँ
- 4.2.3 भाषा शैली
- 4.2.4 निष्कर्ष

4.3 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी)

- 4.3.1 व्याख्या खंड
- 4.3.2 विशेषताएँ
- 4.3.3 भाषा शैली
- 4.3.4 निष्कर्ष

4.4 मजदूरी और प्रेम (सरदार पूर्ण सिंह)

- 4.4.1 व्याख्या खंड
- 4.4.2 विशेषताएँ
- 4.4.3 भाषा शैली
- 4.4.4 निष्कर्ष

4.5 कविता क्या है? (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

- 4.5.1 व्याख्या खंड
- 4.5.2 विशेषताएँ

4.5.3 भाषा शैली

4.5.4 निष्कर्ष

4.6 नाखून क्यों बढ़ते हैं? (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

4.6.1 व्याख्या खंड

4.6.2 विशेषताएँ

4.6.3 भाषा शैली

4.6.4 निष्कर्ष

4.7 पगडंडियों का जमाना (श्री हरिशंकर परसाई)

4.7.1 व्याख्या खंड

4.7.2 विशेषताएँ

4.7.3 भाषा शैली

4.7.4 निष्कर्ष

4.8 अस्ति की पुकार हिमालय (श्री विद्यानिवास मिश्र)

4.8.1 व्याख्या खंड

4.8.2 विशेषताएँ

4.8.3 भाषा शैली

4.8.4 निष्कर्ष

4.9 सारांश

4.10 मुख्य शब्दावली

4.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

**4.0 परिचय :**

'निबंध' आधुनिक गद्य साहित्य की विधा है। निबंध शब्द दो शब्दों 'नि' + 'बंध' से मिलकर बना है। नि उपसर्ग तथा बंध घञ प्रत्यय का योग है जिसका अर्थ है – विशेष रूप से बांधना या संगठन। निबंध लेखन पाश्चात्य साहित्य में हिंदी में ग्रहण किया गया है। बेकन को प्रथम निबंधकार होने का गौरव प्राप्त है। ॲलैक्जैंडर स्मिथ ने निबंध को रचनाकार की मनःस्थिति पर निर्भर माना है, साथ ही गीतिकाव्य के निकट भी माना है। बालकृष्ण भट्ट ने ऍसे, अथवा आर्टिकिल दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। शुक्ल जी ने निबंध को गद्य की कसौट कहा है तथा श्यामसुंदर दास ने व्यक्तिगत प्रयास कहा है।

प्रत्येक विधा अपने पीछे इतिहास के स्रोत छोड़ जाती है। जिससे उसका शैशव बालपन, यौवन को जाना जाता है। निबंध द्वारा मनुष्य विशेष पर अपनी मौलिकता का परिचय देकर शब्दों द्वारा भावनाओं को व्यक्त करता है। कसावट, वर्णन कौशल द्वारा वर्णित विषय प्रभावोत्पादक बन जाता है। भारतेंदु युग से प्रारंभ विधा वर्तमान तक अजस्र धारा से चली आ रही है। शुक्ल, भट्ट जी ने अपनी वैचारिक चेतना द्वारा इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

भारतेंदु युग को अनेक विधाओं की पृष्ठभूमि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि गद्य साहित्य के विविध रूप उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, संस्मरण, जीवनी, रिपोर्ताज, डायरी तथा निबंध इसी युग से प्रस्फुटित होकर अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त हुए। आधुनिक काल को गद्य काल भी कहा जाता है। हिंदी निबंध का स्वरूप अनेक रूपों में सामने आया –

(क) भावनात्मक

(ख) सैद्धांतिक

(ग) समीक्षापरक

(घ) विचारात्मक

(ङ) वर्णनात्मक

(च) विवरणात्मक

(छ) व्यंग्यात्मक

(ज) ललित

(झ) सांस्कृतिक

हिंदी निबंध की विकास यात्रा को हम चार भागों में बांट सकते हैं –

**(क) भारतेंदु युग 1857 से 1900 ई. तक** – अन्य विधाओं की भांति हिंदी निबंध भी भारतेंदु युग से प्रारंभ हुए। इसमें विविध विषयों का समावेश हो गया। इतिहास, धर्म, दर्शन, यात्रा, व्यंग्य विनोद, समाज, राजनीतिक सभी विषयों को भारतेंदु जी ने अपनी लेखनी से गौरवान्वित किया। भारतेंदु मैग्जीन, कवि वचन सुधा, बाला बोधिनी पत्रिकाओं में समय–समय पर निबंध निकालते थे। स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, अंग्रेज स्रोत, हिंदी कुरान शरीफ आदि प्रसिद्ध निबंध हैं। भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? शीर्षक से निबंध बलिया के ददरी मेले में दिया था।

भारतेंदु युग के निबंधकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है। वे युगीन साहित्य एवं समाज से परिचित थे। उन्होंने विचारात्मक निबंध में आक्रोश, खीझ, झुंझलाहट को व्यक्त किया है। देश–भक्ति के लिए उनके विचारात्मक निबंध प्रसिद्ध हैं। ब्रिटिश टैक्स अत्याचार, कृषकों की दीन दशा, कूटनीति का निर्ममता के साथ विरोध भी किया। विधवा विवाह के समर्थक थे, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, छुआछूत के विरोधी थे। प्रेम और भक्ति, तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्ति, विश्वास, प्रीति, अभिलाषा आदि मनोवैज्ञानिक निबंध लिखे। वसु, प्रकाश, धूमकेतु, पेड़, सीसा आदि निबंध वैज्ञानिकता के सूचक हैं।

प्रताप नारायण मिश्र का योगदान आत्म व्यंजना परक निबंधों में था। भौं, पेट, दांत, मुच्छ तथा ट, द, त वर्णमाला के आधार पर सुंदर उक्तियों का निर्माण भी किया। रिश्वत, बेकारी, बालशिक्षा, गोरक्षा, विलायत यात्रा आदि विषयों पर निबंध लिखकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। सुधारात्मक प्रवृत्ति के समर्थक थे। स्वभाव में मस्ती एवं चुलबुलापन था। नंद दुलारे वाजपेयी ने इस त्रिवेणी की प्रशंसा करते हुए लिखा कि निबंध के वास्तविक अर्थ में

भारतेंदु ने इनका शिलान्यास किया, भट्ट ने नागरिक बनाया, तथा प्रताप नारायण मिश्र ने उसी की सीमा को विस्तृत कर व्यापक बनाया।

सांकेतिक, व्यंजक, शालीन निबंधों के लिए बालमुकुंद गुप्त का नाम लिया जाता है। शिव शंभू का चिट्ठा निबंध में लॉर्ड कर्जन के समय का चित्रण है। पं0 बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन के निबंध सर्वस्व के द्वितीय भाग में संकलित हैं।

**(ख) द्विवेदी युग 1900 से 1920 तक** – सरस्वती के संपादन से द्विवेदी युग का सूत्रपात होता है। इस युग के निबंधों में परिनिष्ठिता, परिमार्जिता, सामर्थ तथा गतिशीलता के दर्शन होते हैं। उर्दू तथा मराठी का प्रभाव भी दिखाई देता है। द्विवेदी जी को भाषा के परिमार्जन हेतु याद किया जाता है। गंभीर विषयों पर भी निबंध लिखे गए। वर्णनात्मकता, आत्मकथात्मकता, भावात्मकता के दर्शन होते हैं। दंडदेव का आत्मनिवदेन, महाकवि माघ का प्रभात वर्णन, हैजे की कर्त्तव्यपरायणता कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता आदि प्रसिद्ध निबंध हैं। अध्यापक पूर्ण सिंह ने कम मात्रा में निबंध लिखे, लेकिन प्रभावपूर्ण लिखे। आचरण की सभ्यता सच्ची वीरता, कन्यादान, मजदूरी और प्रेम इनके निबंध हैं जिसमें इन्होंने श्रम एवं कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है।

श्यामसुंदर दास के निबंधों में विद्वता की झलक दिखाई देती है। समाज और साहित्य का विवेचन, भारतीय साहित्य की विशेषताएँ आदि निबंध साहित्य की अमूल धरोहर है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी के निबंधों में प्रगतिशीलता, मनोविनोद, प्रवृत्ति तथा चुलबुलापन भी दिखाई देता है। कछुआ धर्म, मारेसि मोहि कुठाऊं, शिशु नाग, मूर्तियाँ व पुरानी हिंदी श्रेष्ठ निबंध हैं।

**(ग) शुक्ल युग 1920 से 1936 तक** – द्विवेदी युग के सर्वाधिक चिंतनशील निबंधकार आचार्य शुक्ल हैं। इन्होंने क्रोध, करुणा, उत्साह, घृणा, ईर्ष्या, लोभ और प्रेम, श्रद्धा और भक्ति आदि भावनात्मक निबंधों का सृजन किया। बौद्धिकता के दर्शन, कविता क्या है? इनके काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, रहस्यवाद आदि निबंध सिद्धांत को व्यक्त करते हैं। भारतेंदु हरिशचंद्र, तुलसी का भक्तिमार्ग, मानस की धर्म भूमि व्यवहारिक निबंध हैं। गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शांति प्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, माखन लाल चतुर्वेदी, विहोगी हरि आदि प्रसिद्ध निबंधकार हैं।

**शुक्लोत्तर युग 1936** – शुक्लोत्तर युग के निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', विद्यानिवास मिश्र का योगदान अविस्मरणीय रहा है। नंद दुलारे वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल विद्यानिवास मिश्र, जोशी, अज्ञेय आदि निबंधकारों का योगदान सराहनीय रहा है। द्विवेदी के व्यक्तित्व में कालिदास की सौंदर्य चेतना, बाणभट्ट का समास गुंफन, रवींद्र की मानवीय दृष्टि का मस्त मौलापन दिखाई देता है। लालित्य का लावन्य देखने को मिलता है। नाखून क्यों बढ़ते हैं?, मेरी जन्म भूमि, एक कुत्ता और एक मैना, वसंत आ गया है, वसंत सिरीज के फूल आदि प्रसिद्ध निबंध हैं।

नारी संबंधी निबंधों के लिए महादेवी वर्मा के निबंध श्रेष्ठता के सूचक हैं। पीड़ितों, शोषितों के प्रति अगाध निष्ठा है। अनुभूति एवं विवेचन का चित्रण है। शृंखला की कड़ियाँ उनका श्रेष्ठ निबंध है। समीक्षात्मक निबंधों में डॉ0 रामविलास शर्मा का नाम आता है। साहित्य, संस्कृति, कला, विनोद, इतिहास, परंपरा का विवेचन किया गया है। विद्यानिवास मिश्र, प्रभाकर माचवे, कुबेर नाथ राय, हरिशंकर परसाई, डॉ0 शिवप्रसाद सिंह के निबंध पाठकों का ज्ञानवर्द्धन करते हैं।

'निबंध निकाय' के अंतर्गत विभिन्न निबंधकारों के निबंधों की व्याख्या की गई है। प्रथम निबंध 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखा गया है। इस निबंध में दर्शाया गया है कि किस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रत्येक साहित्य को उस युग की परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। उन्होंने माना है कि युगीन मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगता है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहता। रामायण और महाभारत काल

में पाई जाने वाली नैतिकता की भिन्नता का भी उन्होंने वर्णन किया है। द्वितीय निबंध आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' है। इस निबंध में द्विवेदी जी ने उर्मिला के प्रति कवियों की उपेक्षादृष्टि को रेखांकित किया है तथा अपनी आत्मीयता व सहानुभूति को प्रदर्शित किया है। तीसरा निबंध सरदार पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' है, इसके अंतर्गत श्रम की महत्ता व किसान की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। निबंधकार श्रम की उपयोगिता पर बल देते हुए जहाँ एक ओर मानव निर्मित वस्तुओं व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देते हैं वहीं दूसरी ओर मशीनीकरण के दुष्परिणामों का भी उल्लेख करते हैं। इन निबंधों से अलग निबंध 'कविता क्या है?' है। आचार्य रामचंद्र शुक्त द्वारा रचित इस निबंध में कविता को परिभाषित करते हुए उसके प्रभाव का वर्णन किया गया है। शुक्ल जी का मानना है कि कविता एक ऐसा माध्यम है जो मानव के हृदय को रसात्मकता में पहुँचा देती है। मानव सांसारिक बंधनों के साथ स्वयं के राग द्वेष से भी दूर हो जाता है तथा वैयक्तिकता सार्वभौमिकता में बदल जाती है। इस कड़ी का एक अन्य निबंध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखू क्यों बढ़ते हैं?' में मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों व आदिमानव व वर्तमान मानव का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। उन्होंने मानव की पाशवित प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अपने चिंतन से अवगत कराया है। एक अन्य निबंध 'पगडंडियों का जमाना' निबंधकार हरिशंकर परसाई की रचना है। इस निबंध में परिसाई जी ने मनुष्य के द्वारा सत्य के मार्ग पर चलते समय आने वाली बाधाओं व परीक्षाओं का जिक्र किया है। इस निबंध में समाज में बदलते मानदंडों का भी उल्लेख है। निबंधों की इस शृंखला की आखिरी कड़ी के रूप में निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' है जिसके रचियता भारतीय संस्कृति के पोषक विद्या निवास मिश्र हैं। इस निबंध में हिमालय की महिमा का बखान किया गया है। हिमालय के धार्मिक व पौराणिक स्वरूप के साथ ही उसे राष्ट्रीय एकता का प्रतीक व भारतीय संस्कृति का रक्षक भी माना गया है। इन निबंधों के द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त होता है।

### 41 इकाई के उद्देश्य :

पाठ्यक्रम की इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझने योग्य होंगे –

'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास' नामक निबंध के अंतर्गत युगीन परिस्थितियों के साहित्य पर प्रभाव को;

'कवियों की उर्मिला विषयक' उदासीनता के अंतर्गत कवियों की उर्मिला के प्रति उपेक्षा भाव को;

'मजदूरी और प्रेम' निबंध के माध्यम से श्रम की महत्ता को;

'कविता क्या है?' निबंध के द्वारा मानव मन पर पड़ने वाले कविता के प्रभाव को;

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' के अंतर्गत आदिमानव व वर्तमान मानव के तुलनात्मक अध्ययन को;

'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध के माध्यम से समाज के बदलते मानदंडों को;

अंतिम निबंध 'अस्ति की पुकार हिमालय' के अंतर्गत हिमालय की महत्ता को।

### 4.2 साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है (श्री बालकृष्ण भट्ट)

बालकृष्ण भट्ट जी भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकार हैं। शुक्ल जी से पूर्व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को चित्रित करने वाले प्रथम निबंधकार हैं। भाषा के माध्यम से भावों तथा विचारों की सफल प्रस्तुति की जाती है। भाषा में विविध भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से हिंदुस्तानी भाषा को प्रमुखता मिलती है। सहृदय व्यक्ति शब्दों में भावों को पिरोकर

जन सामान्य की सुप्त भावनाओं को जगाने का प्रयास करता है। भट्ट जी ने इस निबंध के द्वारा साहित्य के विविध रूपों, प्रमुख ग्रंथों, वेदों, उपनिषद, पुराण, भाषा जैसे विविध प्रसंगों को भाषा द्वारा ही अभिव्यक्ति प्रदान की है। भाषा में कसावट तथा सरलता से काव्य की प्रसिद्धि के स्वर मुखरित होते हैं।

### 4.2.1 व्याख्या खंड :

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं। मनुष्य का मन जब शोक–संकुल, क्रोध से उद्दीप्त या किसी प्रकार की चिंता से बेचिंता रहता है तब उसकी मुखच्छति तमसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है, उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल समान, बेसुरी बेताल, बेलय या करुणापूर्ण, गद्‌गद् या विकृत स्वर–संयुक्त होती है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यांश भारतेंदु युग निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में लेखक साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध युगीन संदर्भ में उद्‌घाटित करता है।

**व्याख्या :** समाज में घटित होने वाली घटनाएँ देश काल, वातावरण के सजीव चित्रण की झांकी युगीन साहित्य की मौलिकता द्वारा दर्शाती हैं। समाज एवं साहित्य की पारस्परिक आत्मनिर्भरता वातावरण की प्रस्तुति को मुखरित करती है। समसामाजिक घटनाक्रम की यथार्थ प्रस्तुति साहित्यकार की सजगता का बोध कराती है। समाज की उन्नति, अवनति, हर्ष–विषाद की सफल प्रस्तुति ही युगीन रचना की प्रसिद्धि का कारण बनती है। यथा समाज तथा साहित्य की उक्ति चरितार्थ होती है। यदि मानव की मनःस्थिति सुखद वातावरण का परिचय कराती है तो साहित्य भी सुखद आत्मानुभूति के दर्शन कराने के लिए बाध्य होगा। मनुष्य के स्वभाव का वर्णन करते हुए बालकृष्ण भट्ट जी कहते हैं कि समाज के साथ साहित्य में परिवर्तन युग की मांग का प्रतीक है। मानव का मन जब वेदना, पीड़ा से त्रस्त होता है, क्रोध का प्रतिकार करता है, चिंतित रहता है तो उसकी मुखाकृति में इन भावों की झलक सहज ही देखी जा सकती है वह मुंह लटकाए, उदासी को धारण किये रहता है। ऐसी स्थिति में उसके मुंह से निकलने वाली वाणी में कर्कशता का आना स्वाभाविक है यह गला फाड़–फाड़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। उसके कंठ से निकलने वाली आवाज जो कभी श्रोताओं के कानों में अमृत करती थी वही फूटे ढोल के समान बेसुरी सी लगती है। उसमें किसी स्वर की तलाश करना मूर्खता होती है। न मधुरता का अंश होता है, न संगीत का प्रभाव। ऐसी करुणामयी वाणी में भले ही जीवन की सच्चाई का सार छिपा हो, लेकिन विकृति से परे होना असंभव है क्योंकि जाति से ही समाज का अस्तित्व संभव है। समाज से राष्ट्र से विश्व की कल्पना साकार होती है। बिंब प्रतिबिंब की अनिवार्यता ही साहित्य को समाज का दर्पण कहलाने पर बाध्य करती है।

**विशेष :**

बालकृष्ण भट्ट जी ने साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास कहा है।

मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। वह हालातों के अनुसार अभिव्यक्ति करने पर बाध्य होता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से भाषा में कसावट का गुण आ गया है।

युगीन यथार्थ की झांकी सार्वकालिक तथ्य को मुखरित करती है।

कथात्मक भाषा की प्रस्तुति है।

चिंता का डर भीमकाय शरीर को शीघ्र ही मौत के मुंह में ढकेल देता है।

कहा भी जाता है कि 'चिंता चिता समान है।'

'फिक्र से फाका भला' उक्ति चिंता के दुष्परिणाम का बोध कराती है।

चिंतित मनुष्य ही भविष्य के प्रति क्रियाशील रहता है।

फूटही ढोल समान उपमा अलंकार है।

सात स्वरों की झंकार रोते व्यक्ति को भी हंसा देती है।

प्रसाद गुण, अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

'मनुष्य के संबंध में इस अनुल्लंघनीय प्रकृति के नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है। जिसमें कभी तो क्रोध पूर्ण भयंकर गर्जन, कभी तो प्रेम का उच्छवास, कभी तो शोक और परितापजनित हृदय–विदारी करुण–निस्वन, कभी तो वीरता गर्व से, बाहुबल के गर्व में भरा हुआ सिंहनाद, कभी तो भक्ति के उन्मेष से चित्त की द्रविता का परिणाम, अक्षुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्‌गार देखा जा सकता है। इसलिए साहित्य को यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जा तो न्याय संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय–समय के आभ्यंतरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।

**संदर्भ :** यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में भट्ट जी का मानना है कि मानव व्यवहार युगीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मानव व्यवहार में परिवर्तन मनःस्थिति का द्योतक है।

**व्याख्या :** भट्ट जी का मानना है कि मानव व्यवहार को जानने के लिए हम परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि मनुष्य परिस्थितियों का सेवक है। व्यवहार की भिन्नता प्राकृतिक नियम का अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार प्रसन्न व दुःखी स्थिति में मानव की व्यवहार शैली बदल जाती है, ठीक उसी प्रकार देश का साहित्य भी इसी नियम का पालन करता है। साहित्य मानव के उत्थान, पतन, जय पराजय की गाथा का प्रमाण होता है। कभी वह अपने क्रोध से युग को अवगत कराता है तो कभी प्रेम से वशीभूत होकर मानवता का आचरण करने को बाध्य होता है। कभी मानव ही मानव के प्राण लेने पर उतारू हो जाता है तो कभी स्नेहातुर होकर अपनी जान की बाजी लगाकर मानवता को जीवंत रखता है। विषम परिस्थितियों में वही मानव कभी करुणा के भाव व्यक्त करता है तो कभी क्रोध के वशीभूत होकर सिंह के समान गर्जन कर अपने स्वभाव से परिचित करा देता है। कभी असहाय होकर आंसुओं की बारिश में डुबो देता है, कभी सांसारिक हलचल से भयभीत होकर भक्ति के सागर में डुबकी लगाता है। साहित्य का क्षेत्र मानव की भावना पर टिका होता है। इसीलिए साहित्य को मानव के क्रिया कलापों को चित्रित करने वाली चित्रशाला भी कजा जाता है। साहित्य द्वारा हम देश की आंतरिक एवं बाह्य परिस्थितियों से अवगत हो जाते हैं। साहित्य के द्वारा हम स्थान विशेष की जाति, समाज की तस्वीर तथा धार्मिक दशा, प्रचलित रीति रिवाजों को भली–भांति जान सकते हैं।

**विशेष :**

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है।

मानव स्वभाव का आंकलन युगीन साहित्य के झरोखें से ही हो सकता है।

मनुष्य का द्रवित होना व प्रसन्नता युक्त होकर मानवोचित व्यवहार करना मानवता का द्योतक है।

सच कहा जाए तो यह संसार ही रंग स्थल है, जिसमें समयानुसार मानव क्रियाकलापों द्वारा समाज को अवगत कराता है।

इतिहास का अध्ययन अतीत के ज्ञान के साथ भविष्य को सुधारने के लिए भी किया जाता है।

साहित्य में वह अमोघ शक्ति है जो मनुष्य को विषम परिस्थति में भी आशा का संचार कराती है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

प्रसाद–गुण है

अविधा शब्द शक्ति की छटा दृष्टव्य है।

'उस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था इससे उनका साहित्य राजनीति की कुटिल उक्ति–युक्ति से मलिन नहीं हुआ था। आए हुए आर्यों की नूतन ग्रथित समाज के संस्थापन में सब तरह की अपूर्णता थी। यहीं पर सबका निर्वाह अच्छी तरह होता जाता था। किसी को किसी प्रकार का अस्वास्थ्य न था, आपस में एक दूसरे के साथ अब का सा बनावट का कुटिल बर्ताव न था। इसलिए उस समय के उनके साहित्य वेद, में भी कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सौहार्द, कपट–वृत्ति, बनावट और चुनांचुनीं ने स्थान नहीं पाया। उन आर्यों का धर्म अब के समान गला घोटने वाला न था।

**संदर्भ :** यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** प्रस्तुत गद्यांश में भट्ट जी ने आर्यों के साहित्य तथा वेदों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है –

**व्याख्या :** लेखक वर्तमान समाज में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता तथा राजनैतिक अत्याचारों से व्यथित होकर आत्म मंथन को विवश है। वर्तमान की, आर्यों के साहित्य एवं वेद से तुलना करते हुए कहते हैं कि समय के साथ मनुष्यों के स्वभाव में भी परिवर्तन आने लगा है। आर्यों के वेद और साहित्य इन कुप्रवृत्तियों से दूर थे। युगीन अत्याचारों से कोसों दूर रहते थे। छल–कपट का नामों निशान न था। वर्तमान की राजनीतिक सोच में गिरावट का दौर जारी है। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रशंसा का सहारा लेकर आलंकारिक शब्दावली का प्रयोग करने लगे हैं। आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी स्वच्छंदता के अवसर नगण्य ही थे। सुख सुविधाओं से वंचित होने पर भी मनुष्य असद् वृत्तियों से परहेज करता था। अपनी जीवन शैली को स्वाभाविकता के साथ जीता था। पारस्परिक मतभेद नज़र नहीं आते थे। सबका जीवन सुखों से परिपूर्ण था। वर्तमान युग में चारों ओर व्याप्त छल कपट, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या–द्वेष, कृत्रिमता तथा स्वार्थ लिप्सा का बोलबाला है। यह कुत्सित प्रवृत्तियाँ उस समय नहीं थीं। मनुष्यों के बीच आपसी मेल जोल था। स्नेह सागर में विचरण करते थे। इन्हीं गुणों के कारण आर्यों के वेद और साहित्य बनावटीपन से मुक्त थे। व्यर्थ की बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता था। आसुरी प्रवृत्तियाँ दुम दबाकर भागती थीं। आर्यों का धर्म सत्य एवं सदाचार पर आश्रित था, किसी दूसरे को गड्ढे में ढकेलने की प्रवृत्ति नहीं थी। धार्मिक परिवेश, रूढ़ियों, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त था। आर्यों के साहित्य में स्थान–स्थान पर भोलापन एवं सरलता के लक्षण विद्यमान रहते थे।

**विशेष :**

आर्यों के साहित्य एवं वेद की प्रशंसा की गई है।

वर्तमान और अतीत के साहित्य एवं वेद में व्याप्त असमानता का दिग्दर्शन कराया गया है।

पथभ्रष्ट राजनीति की ओर संकेत किया गया है।

वेद चार माने जाते हैं –

(क) ऋग्वेद, (ख) यजुर्वेद, (ग) सामवेद, (घ) अथर्ववेद।

अतीत के अध्ययन द्वारा हम वर्तमान को सुधारने एवं भविष्य को संभालने का कार्य करते हैं।

लेखक पथभ्रष्ट समाज के प्रति चिंतित है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

संस्कृनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण की छटा दृष्टव्य है।

'रामायण के समय से महाभारत के समय के लोगों के हृदयगत भाव में कितना अंतर हो गया था कि रामायण में दो प्रतिद्वंद्वी भाई इस बात के लिए विवाद कर रहे थे कि यह समस्त राज्य और सिंहासन हमारा नहीं है यह सब तुम्हारे हाथ में रहे, अंत में रामचंद्र ने भरत को विवाद से पराभूत कर समस्त साम्राज्य उनके हस्तगत कर आप आनंद–निर्भर चित्त हो सस्त्रीक वनवासी हो गये। वहीं महाभारत में दो भाई इस बात के लिए कलह करने पर संबद्ध हुए कि जितने में सुई का अग्रभाग ढक जाए इतनी पृथ्वी भी बिना युद्ध के हम न देंगे।

**संदर्भ** : यह अवतरण भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग** : इन पंक्तियों में भट्ट जी का मानना है कि समय के साथ युगीन मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगता है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहता। रामायण और महाभारत काल में पाई जाने वाली नैतिकता की भिन्नता का वर्णन करते हुए भट्ट जी कहते हैं –

**व्याख्या** : समाज और साहित्य की बदलती प्रवृत्ति के साथ मानव के स्वभाव व भावों में भी परिवर्तन होने लगत है। मनुष्य का दृष्टिकोण समय–सीमा को लांघता युगानुरूप बदलता रहता है। भट्टट जी ने इस विचार को रामायण ओर महाभारत के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। रामायण युग सर्वश्रेष्ठ युग था। मानवीय मूल्यों, नैतिकता, सदाचार का बोलबाला था। समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं, मनुष्यों का नजरिया भी बदल गया। महाभारत में वही गुण अवगुण में परिवर्तित हो गए। समाज में ईर्ष्या, द्वेष, छल–कपट का साम्राज्य स्थापित हो गया। स्वार्थ लिप्सा की भावना पनपने लगी। रामायण में जो दो भाई आपस में इस बात के लिए झगड़ रहे थे कि यह राज्य मेरा नहीं है तुम्हारा है। राज्य के प्रति अनिच्छा का भाव था। आपस में कितना स्नेह था। एक दूसरे को राजा बनाने को तैयार थे। अंततः भगवान राम ने तर्क के द्वारा भरत को इसके लिए राजी कर लिया। अपनी पत्नी सीता के साथ वन को चले गए। मन में किसी प्रकार का भेदभाव न था। रामाया का काल समाज में प्रगति को प्राप्त था। मानवीय भावना चरमोत्कर्ष पर थी। धर्म का बोलबाला था, नैतिकता का साम्राज्य था, एक दूसरे का सम्मान था। महाभारत काल में सभी विपरीत हो गया। गुणों की छाप अवगुणों में बदल गई। मूल्य, संस्कृतियों, सम्मान तथा नैतिकता में बदलाव आ

गया था। पारस्परिक स्पर्धा, द्वेष, प्रतिकार की भावना पनपने लगी थी। महाभारत में दो भाई इस बात के लिए संघर्ष कर रहे थे कि राज्य मेरा है मैं ही वास्तविक स्वामी हूँ भाइयों के बीच प्रेम घृणा में बदल गई थी। एक इंच जमीन न देने की प्रतिज्ञा करने लगे। युद्ध के लिए एक दूसरे को आमंत्रित करने लगे।

**विशेष :**

भट्ट जी ने रामायण तथा महाभारत काल की विशेषताओं का उल्लेख किया है।

समाज में मूल्यों का पतन युगीन परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है।

मानवीय मूल्यों की रक्षा, नैतिकता का समर्थन, त्याग की भावना के कारण ही रामायण का काल स्वर्मिण काल कहलाता है, जबकि मूल्यों के विघटन, कुप्रथाओं का बोलबाला, तथा नैतिकता के पतन के कारण महाभारत का युग 'युद्ध का युग' कहा जाता है।

समाज तथा समय के बदलने पर मूल्यों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

रागात्मक भाषा की छटा दृष्टव्य है।

भगवान राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर 'रघुकुल रीति' का पालन किया।

'जिनकी कविता के प्रधान नायक श्री रामचंद्र आर्य जाति के प्राण, दया के अमृत सागर, गांभीर्य और पौरुष की मानो सजीव प्रतिकृति थे। वे प्रीति और समभाव से महानीच जाति के चांडाल तक को गले लगाते थे। उन्होंने लंकेश्वर से प्रबल प्रतिद्वंद्वी शत्रु को भ कभी तृण के बराबर नहीं समझा। स्वर्ण मंडित सिंहासन और तपोवन में पर्ण कुटी उन्हें एक सी सुखकारी हुई। उनके स्मितापूर्णाभिभाषित्व और उनकी बोलचाल की मुग्ध माधुरी पर मोहित हो दंडकारण्य की असभ्य जाति ने भी अपने को उनका दास माना।

**संदर्भ :** यह गद्यावतण प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के ह्रदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** उक्त पंक्तियों में भट्ट जी ने रामचंद्र जी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है –

**व्याख्या :** भट्ट जी का मानना है कि आदिकवि की अमर रचना 'वाल्मीकि रामायण' के प्रमुख नायक भगवान रामचंद्र गुणों के भंडार हैं। समस्त आर्य जाति उन पर गर्व करती है। वे आर्य जाति के सिरमौर हैं। दया के सागर हैं अर्थात् सहनशील हैं। पौरुष की साक्षात् मूर्ति हैं। उनका उदार ह्रदय सभी के लिए खुला है। उनकी दृष्टि में सभी समान हैं। वे निम्न से निम्न जाति को भी गले लगा लेते हैं, उन्हें ऐसा करने में संकोच का अनुभव नहीं होता। भेदभाव की काली छाया उनके निकट नहीं फटकती। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण लंका का राजा रावण, या उससे भी अधिक प्रबल शत्रु को भी अपने से नीचे नहीं माना। वे समभाव से रहते हैं। राज सिंहासन का लोभ भी उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। उन्हें घास की झोपड़ी और राज सिंहासन में कोई अंतर नहीं लगा। वे सुख और दुःख में समभाव रहने वाले हैं। उनके मधुर होठों पर मंद मुस्कान चिर परिचित लगती है। उन्होंने अपनी मधुर वाणी से असभ्य तथा बर्बर कही जाने वाली जाति को भी अपना बना लिया। अर्थात् स्वयं उनके अनुचर हो गये।

**विशेष :**

भट्ट जी ने भगवान राम के गुणों का वर्णन किया है।

मानवोचित गुणों के फलस्वरूप ही लंका का विभीषण उनका सेवक बन जाता है तथा रामचंद्र जी ने विभीषण को भी गले लगाकर उदार हृदय का परिचय दिया।

तुलसीदास जी ने रामचंद्र की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है –

'ऐसो को उदार जग मांही

बिनु, सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोऊ नाही।'

मधुर वाणी का प्रभाव अमिट होता है। कबीर दास जी का मानना है कि –

'मधुर वचन हैं औषधि

कटुक वचन है तीर।'

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।

प्रसाद–गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की छटा है।

'शत्रु–संहार और जिन कार्य साधन निमित व्यास ने महाभारत में जो–जो उपदेश दिए हैं और राजनीति की काठ–ब्योंत जैसी–जैसी दिखाई है उसे सुनकर विस्मार्क सरीखे इस समय के राजनीति के मर्म में कुशल पुरुषों की अकिल भी चरने चली जाती होगी। इससे निश्चय होता है कि प्रभुत्व और स्वार्थ साधन तथा प्रवंचता परवश भारत वर्ष उस समय कहाँ तक उदार भाव संवेदना आदि उत्तम गुणों से विमुख हो गया था।

**संदर्भ :** प्रस्तुत निबंध प्राख्यात निबंधकार, भारतेंदु के अनन्य सहयोगी बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में महाभारत युग की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए भट्ट जी कहते हैं–

**व्याख्या :** भट्ट जी कहते हैं कि आदि कवि ने वाल्मीकि रामायण में जिन अवगुणों से राम को विमुक्त रखा था वही महाभारत काल में आकर गुणों की परिधि में आ गए। महाभारत में वेदव्यास जी ने शत्रुओं एवं राक्षसों का संहार करने के लिए जिन नियमों का अतिक्रमण दिखाया है अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु जिन कार्यों, हथकंडों, साधनों व युक्तियों को अपनाया है तथा स्वार्थ पूर्ति हेतु राजनीतिक अधिकारों का दुरुपयोग किया है वे सभी कार्य समाज के विपरीत हैं। समाज द्वारा त्यक्त हैं। इनको पढ़कर प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ विस्मार्क भी शर्म से सिर झुका लेता है। दांतों–तले उंगली दबाने पर विवश है कि भारत जिन घृणित कार्यों से रामायण काल में कोसों दूर था। तब प्रेम, उदारता, संवेदना आदि सद्‌गुणों का साम्राज्य था, महाभारत युग उनसे विमुख हो गया। लेखक को लगता है कि महाभारत कालीन भारत इन दुर्गुणों के कारण अपयश का भागीदार बन गया है।

**विशेष :**

लेखक ने महाभारत कालीन छल प्रपंच का वर्णन किया है।

युद्ध की विभीषिका का मूल कारण दुर्गुणों की वृद्धि होना था।

दूषित राजनीति का पर्दाफास किया है।

अविधा शब्द–शक्ति है।

प्रसाद गुण की छटा है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

रामायण और महाभारत ग्रंथ दो युग के सार्थक दस्तावेज हैं।

'हमारी एक हिंदू जाति के असंख्य टुकड़े होते–होते यहाँ तक खंड हुए कि अब नये–नये धर्म और मत–प्रवर्तक होते ही जाते हैं। ये टुकड़े जितना वैष्णवों में अधिक हैं इतना शैव शाक्तों में नहीं और आपस में एक–दूसरे का दूसरे के साथ मेल और जान–पाना जितना कम इनमें है इतना औरों में नहीं। राम के उपासक कृष्ण से लड़ते हैं, कृष्ण के उपासक राम उपासकों से इत्तिफाक नहीं रखते।

**संदर्भ :** यह गद्यांश भारतेंदु मंडल के निबंधकार बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में भट्ट जी ने हिंदू जाति का विभाजन होने की स्थितियों के कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है –

**व्याख्या :** भारतीय संस्कृति की विशेषता 'अनेकता में एकता' का भाव भी पारस्परिक मतभेदों के फलस्वरूप विशृंखलित हो चला है। हिंदू समाज में अनेक मत प्रचलित हो गए हैं। नए धर्मों एवं मत प्रवर्त्तकों के होने से भोली जनता असमंजस्य में पड़ गई है। एक दूसरे की टांग–खिंचाई से एकता का भाव समाप्त होने लगा है। वैष्णव धर्म इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। शैव और शाक्तों में वर्गीकरण की प्रक्रिया कुछ सीमा तक कम दिखाई देती है। आपसी उठना–बैठना, खाना–पीना भी नहीं हो पाता। वैचारिक समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। राम उपासक कृष्ण उपासकों से मतभेद रखते हैं वहीं कृष्ण उपासक भी राम उपासकों से कोई रागात्मक संबंध नहीं रखते।

**विशेष :**

भट्ट जी ने हिंदू समाज के विघटन का उल्लेख किया है।

धर्म प्रर्वतकों की विचारधारानुसार ही देश में विघटन की स्थिति पैदा हो गई है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

उर्दू शब्द इत्तिफाक प्रयुक्त हुआ है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

### 4.2.2 विशेषताएँ :

बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है निबंध साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित संबंध को निरूपित करता है। समाज में घटित घटना चक्र ही सहृदय लेखकों को अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करता है। इस निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) अभिव्यक्ति का स्रोत** : साहित्य मनुष्य के परिवेश–वातावरण की यथार्थ अभिव्यक्ति होता है। मनुष्य का हृदय जब दुख से ग्रस्त होता है तो उसकी संवेदना भावों द्वारा व्यक्त होकर साहित्य विधा के रूप में सामने आती है। मनुष्य का क्रोध, चिंता की लकीरें उसकी मुखाकृति को व्यंजित करती हैं। उसमें वेदना होती है। आत्ममंथन की प्रेरण होती है। जब मनुष्य का मन आनंदित होता है तो उसके मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह् दिखाई देते हैं, होठों पर कमल सी ताजगी मंद–मंद मुस्कान उसके आंतरिक भावों को मुखरित करती है। मुख पर कमल सी ताजगी, नेत्रों में चमक तथा कंठ ध्वनि कोकिल के समान सभी में आनंद का संचार करती है।

**(ख) आर्यों की वेद उपनिषद के रूप में साहित्यिक झांकी** – वेदों को आर्यों की साहित्यिक अभिरूचि का माध्यम माना गया था। प्रारंभिक अभिव्यक्ति में भोलापन, उदार भावना, निष्कपट व्यवहार से साहित्य महिमा मंडित थी। वेदों में वर्णित महापुरुषों का जीवन समाज के आंतरिक वर्ण भेद तथा उन्नति ह्रास के झगड़े से दूर था। प्राकृतिक छानबीन में समय बर्बाद नहीं करते थे। न वासनान्ध होकर कविता कामिनी के इर्द–गिर्द चक्कर लगाते थे। प्रकृति की भोर बेला का पान करते थे। राजनैतिक छलप्रपंच से दूर रहते थे। साहित्य में राजनीति की झलक नहीं मिलती थी। कृत्रिमता न थी। पारस्परिक मेल जोल था।

प्राकृतिक पदार्थों का अनुशीलन करते हुए जो भाव पैदा हुए वही उपनिषद के नाम से जाने गए। एकता को स्थापित करने, मानवीय गुणों की रक्ष करने, सामाजिक नियमों का पालन करने हेतु स्मृतिपरक साहित्य का अस्तित्व सामने आया। विभिन्न विषयों का सूत्रपात हुआ, दर्शन ग्रंथों की रचना की गई, भाषा में सरलता का गुण समाहित हो गया।

**(ग) रामायण, महाभारत ग्रंथों में वर्णित साहित्य** – रामायण साहित्य का प्रमाण था। भारतीय सभ्यता का यौवन था। पुरुष प्रधान समाज का वर्चस्व था। निस्पृहता का भाव था, त्याग की भावना थी, पारस्परिक स्नेह था, सम्मान था। वहीं महाभारत में विपरीत होने लगा, छल प्रपंच का बोलबाला होने लगा, कूट–युद्धों का स्वरूप सामने आने लगा। राज्य लिप्सा बढ़ने लगी थी, त्याग की भावना समाप्त हो गई। भूमि विवाद का कारण बनी, फल विनाश के रूप सामने आया। रामायण के राम दया के सागर हैं, सहृदयशील हैं, प्रीति और समभाव को गले लगाते हैं। समय के बदलने से रामायण क विशेषताएँ महाभारत में अवगुण में बदल गई।

**(घ) बौद्ध ग्रंथों का निर्माण** – रामायण महाभारत के बाद बौद्ध युग प्रधान हो गया। साहित्य में भी बदलाव आने लगा। वेदों तथा ब्राह्मण गुणों की आलोचना की जाने लगी। संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा सर्वोपरि हो गई। नंद तथा चंद्रगुप्त का समय इसका स्वर्ण युग था। श्रेष्ठ साहित्य को इनाम भी दिया जाता था।

**(ङ) पुराण के रूप में साहित्य**– बौद्ध युग के बाद पुराणों, स्मृतियों के रूप में साहित्य देखने को मिला। जातिगत विषमता पुराणों की ही देन थी। शुद्ध सात्विकी धर्म को प्रमुखता दी जाने लगी। अनेक देवी देवताओं का अस्तित्व सामने आया। तत्रंमंत्र प्रधान होने लगा था। शैव, शाक्त, वैष्णव धर्म सामने आने लगे थे। राम और कृष्ण के उपासक भी आपस में लड़ने झगड़ने लगे।

**(च) भाषाओं का स्वरूप** – प्राकृत के बाद समाज में खड़ी बोली, अवधी, मराठी, पंजाबी, बंगाली, गुजराती आदि भाषाओं को बोला जाने लगा। पद्मावत और पृथ्वीराज रासो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ दो भाषाओं के प्रबल प्रमाण हैं। भोजपुरी, बुंदेली भाषा भी बोली जाने लगी। कबीर, सूर, तुलसी जैसे महान साहित्यकारों से पाठक वर्ग अवगत होने लगा था।

**(छ) आलोचना का स्वरूप** – छिद्रान्वेषण की प्रकृति मानव प्रवृत्ति का द्योतक है। आलोचना का सूत्रपात हो चुका था। 'उर्दू' को उसका खामियाजा भी उठाना पड़ा। अपनी भाषा को श्रेष्ठ साबित करने के लिए कुचक्रों की बुनियाद भी पड़ गई।

### 4.2.3 भाषा शैली :

भाषा पर भट्ट जी का पूर्णाधिकार था। हिंदी के साथ संयुक्त भाषा का चित्रांकन सरलता का द्योतक है। उन्होंने खड़ी बोली को जन सामान्य तक सर्वग्राह्य बनो के लिए प्रयत्न किया। भाषा के विविध स्वरूपों में काव्यात्मक, वर्णनात्मक वर्णन भाषा द्वारा ही प्रभावी बने हैं। भाषा में जीवंतता, व्यावहारिकता का प्रभाव है। भाषा में पूर्वी व अवधी भाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। भाषा में तद्भव शब्दों की प्रधानता है। भाषा सहज सरल, सुबोध एवं बोधगम्य है। संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग भी मिलता है। यथा –

'सूच्यग्रं, नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवः।' भिन्न रूचिहि लोकः अश्वत्थामा हतः नरों वा कुजरो वा।

काव्यात्मक भाषा का उदाहरण देखा जा सकता है –

'मनुष्य का मन तब शोक–संकुल, क्रोध से उद्दीप्त, या किसी प्रकार की चिंता से दोचिता रहता है जब उसकी मुखच्छवि मतसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है। उस समय उसके कंठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल समान बेसुरी, बेताल, बेलय या करुणापूर्ण गद्गद तथा विकृत–स्वर–संयुक्त होती है।' इस निबंध में तत्सम शब्दों का प्रयोग, मुहावरा, उत्प्रेक्षा, उपमा अलंकार की छटा भी दिखाई देती है। मिल्टन, प्रोज, ॲगस्तन पीरिऍड, अंग्रेजी के शब्द भी हैं। जारी, बुनियाद, कौमियत, उमदा, निहायत, अलबत्ता, कौम, फिरके, करतूत जैसे उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग भी है।

भट्ट के निबंधों में भावात्मक, वर्णनात्मक, अलंकारिक शैली की छटा देखने को मिलती है। अलंकारिक शैली का उदाहरण देखा जा सकता है– 'ज बवह चित्त आनंद की लहरी से उद्वेलित हो नृत्य करता है और सुख की परंपरा में मग्न रहता है उस समय मुख विकसित कमल सा प्रफुल्लित नेत्र मानो हंसता सा, और अंग–अंग चुस्ती और चालाकी से फिरहरी की तरह फाका करता है।' वर्णनात्मक शैली का वर्णन इन शब्दों में मिलता है– 'मनु, अत्रि हारीत, याज्ञवल्क्य ने अपने–अपने नाम संहिता में बनाए; विविध प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक संबंधी विषयों का सूत्रपात किया। इन्हीं के समकालीन गौतम कणाद्, जैमिनि पतंजलि आदि हुए जिन्होंने अपने–अपने सोचने का परिणाम रूप दर्शनशास्त्रों की बुनियाद डाली।'

### 4.2.4 निष्कर्ष :

भारतेन्दु मण्डल के विचारात्मक निबंधकारों में बालकृष्ण भट्ट का नाम सर्वोपरि है। आपके निबंध विद्वता के द्योतक हैं। 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' निबंध में भट्ट जी की बहुज्ञता प्रदर्शित है। समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध युगीन परिवेश को व्यक्त करता है। साहित्य का अवलोकन करने के लिए मनुष्य से संबंधित परिदृश्यों का अध्ययन अपेक्षित है। प्रस्तुत निबंध में समाज, वेद, इतिहास, कवि, उपनिषद्, महत्त्वपूर्ण रचनाएँ, बौद्धयुग, भाषा, पुराण, जाति आदि पक्षों का साहित्यिक आइने में बिंब प्रतिबिंब दिखाया है।

साहित्य मनुष्य का अनुगमन तो करता है मार्ग दर्शन भी करता है। मानव हृदय की झांकी साहित्य दर्पण में दिखाई देती है। जब मानव का मन चिंता से व्यथित होता है, तो उसके क्रिया कलापों, अभिव्यक्ति में भी खिन्नता का स्वर मुखरित होता है। सुखद स्थिति में वही मन आनंदित होकर स्वर लहरियों की अभिव्यक्ति करता है। उसके मुख पर तेज झलकता है। वीरता के प्रसंग पर उसकी आंखों से क्रोध दिखाई देता है। इतिहास केवल बाह्य परिवेश को अभिव्यक्त करता है जबकि साहित्य आंतरिक पक्ष को भी मुखरित करता है।

आर्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम वेद थे। आर्यों की शैशवावस्था में भोलापन टपकता था, व्यवहार में सादगी झलकती थी। वेदों में वर्णित चरित्र मनु और याज्ञवलक्य के समाज की संकीर्णताओं से मुक्त थे। वायु को शक्ति मानकर पूजा को तत्पर रहते थे। वर्तमान धर्म की अपेक्षा उनके धर्म में सहानुभूति थी। आर्यों के ईश्वर संबंधी विचार उपनिषद के नाम से अविहित किये गए। रीतिरिवाज के पालन, पारस्परिक एकता तथा सामाजिक नियमों के

पल्लवन के लिए स्मृतियों को सवीकार किया गया। अनेक संहिताओं का निर्माण किया गया, दर्शन शास्त्रों की नींव पड़ी। भाषा में स्वाभाविकता का गुण सम्मिलित किया गया। लोक और वेद की भाषा का स्वरूप सामने आया।

रामायण और महाभारत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ माने जाते हैं। रामायण काल, संस्कृति सभ्यता का चरमोत्कर्ष था। महाभारत काल में आकर सभ्यता पतन के गर्त में चली गई। रामायण में मनुष्यों के बीच पारस्परिक मैत्री भाव था। त्याग की भावना सर्वोपरि थी। राज्य के प्रति अनिच्छा का भाव था, जबकि महाभारत में भाइयों में मतभेद हो गये, भाई–भाई एक दूसरे के दुश्मन हो गए। राज्य के लिए आपस में झगड़ने लगे। वाल्मीकि तथा व्यास रूस, यूनान, इटली, इंग्लैंड में भी गले का हार बन गए। राम का अलौकिक व्यक्तित्व वाल्मीकि की कल्पना समुद्र का वह स्वर्ण कमल था जिसकी रामराज्य की सुगंध ने सभी को मोह लिया।

महाभारत के बाद साहित्य क्षेत्र में परिवर्तन हुआ तथा बौद्ध साहित्य का वर्चस्व हो गया। वेद और ब्राह्मणों का विरोध होने लगा। संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा का प्रचलन होने लगा। चंद्रगुप्त और नंद के समय प्राकृत भाषा का बोलबाला रहा। वे जैनियों के ग्रंथों की भाषा बनी।

बौद्ध युग के पतन के गर्त से पुराण और संहिताओं का स्वरूप सामने आया। वेदों में व्यक्त रीति–रिवाजों का शुद्धिकरण कर शुद्ध सात्विक धर्म का स्वरूप सामने आया। अनेक देवताओं की पूजा की जाने लगी, मांस भक्षण का चलन होने लगा। पुराणों के फलस्वरूप समाज में (हिंदू जाति) में जाति–पाति का भाव पनपने लगा। शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध धर्म के वर्ण बनने लगे। छुआछूत सर्वोपरि था। राम और कृष्ण उपासक आपस में झगड़ते थे।

प्राकृत के पश्चात् विभिन्न भाषाओं का प्रचलन होने लगा था। अवधी भाषा में रामचरित मानस के पहले पद्मावत ने मनुष्यों का ध्यान आकृष्ट किया। साहित्यिक उपलब्धि के लिए पद्मावत अनमोल उपलब्धि है। पृथ्वी राज रासो द्वारा चारण  भाषा का अस्तित्त्व सामने आने लगा था। तत्पश्चात् गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी, बृजभाषा तथा बुंदेलखंडी भाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाने लगा था। आलोचना द्वारा 'उर्दू' भाषा की प्रगति का मार्ग अवरूद्ध करने की प्रवृत्ति से परहेज करने पर बल दिया।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

1. साहित्य किसका दर्पण होता है?
2. वेद कितने प्रकार के होते हैं?
3. जन समूह के हृदय के विकास को क्या कहते हैं?
4. त्याग की भावना किस ग्रंथ में मिलती है?
5. आनंद के समय मुख कैसा होता है?
6. मनुष्य के हृदय का आदर्श क्या कहलाता है?
7. दुखी व्यक्ति की आवाज किसके समान होती है?
8. साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ कौन–कौन से हैं?

## 4.3 कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी)

भारतेंदु युग में प्रस्फुटित निबंध विधा में अनेक विषयों का समावेश महावीर प्रसाद द्विवेदी को सरस्वती पत्रिका में हुआ। द्विवेदी युग प्रवर्त्तक थे। उन्होंने भाषा को परिस्कृत, सुगम व बोधगम्य बनाया। युगीन ज्वलंत विषयों की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया। वर्णित निबंध द्विवेदी युग की उपलब्धि बन गए। साहित्य, राजनीति, भाषा, संस्कृति,

जीवन, भूगोल आदि पर व्यक्त विचारों में मौलिकता झलकने लगी। द्विवेदी जी ने कवियों, लेखकों को नएपन के भावबोध से संपन्न बनाया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस निबंध द्वारा रामायण में वर्णित पात्रों में उर्मिल की स्थिति को चित्रित किया है। उर्मिला जो सीता की सहेली थी, दशरथ की पुत्रवधू थी, लक्ष्मण की पत्नी थी, उसका भी पालन–पोषण व शिक्षा–दिक्षा सीता समान ही हुई थी, राम वन गमन के समय उसकी ओर किसी ने आंख उठाकर नहीं देखा। उसके व्यक्तित्त्व पर दो शब्द कहने का साहस नहीं जुटा पाए। द्विवेदी जी ने इसी उर्मिला विषयक प्रसंग में अपनी मौलिकता व कविों के उपेक्षापूर्ण रवैये का वर्णन किया है।

### 4.3.1 व्याख्या खंड :

'जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया; जी में न आया तो हिमालय पर्वत की तरफ भी आंख उठाकर न देखा।' यह उच्छृंखलता, उदासीनता सर्वसाधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। क्रोंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी का निषाद द्वारा वध किया गया, उसे देख जिस कवि–शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और मुख से 'मा निषाद' इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वहीं पर वह दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावरण द्विवेदी युग के प्रणेता, पुरोधा, खड़ी बोली के समर्थक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में द्विवेदी जी का मानना है कि विषय को महत्त्व प्रदान करना लेखकों, कवियों की मनःस्थिति पर निर्भर करता है। वाल्मीकि, तुलसीदास तथा संस्कृत कवि भवभूति की दृष्टि भी उर्मिला के जीवन को न देख पाई। द्विवेदी जी ने कवियों की उदासीनता का वर्णन करते हुए कहा –

**व्याख्या :** द्विवेदी जी का मानना है कि कवि आम मनुष्यों से अधिक संवेदनशील एवं चेतना संपन्न होता है। रचना के विषय चयन में उनकी वैयक्तिक रूचि का योगदान होता है। वे चाहें तो तुच्छ से तुच्छ विषय को भी अपनी अभिव्यक्ति, क्षमता एवं संवेदना से पाठकों के लिए सर्वग्राह्य बना सकते हैं। अगर उनका मन विषय के प्रति आकृष्ट नहीं है तो महान विषय की गंभीरता भी पाठक की उदासीनता का कारण बन जाती है। भले ही वह विषय चाहे हिमालय ही क्यों न हो। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण रामायण की उर्मिला है। किसी ने उसे आंख उठाकर नहीं देखा। कवियों का यह समाज विचित्र तथा स्वच्छंद ही रहा। वाल्मीकि जैसा प्रकांड विद्वान भी अपने गुणों का बखान करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि वह वाल्मीकि जिसने क्रौंच पक्षी के वध को देखकर रामायण रच डाला वह महर्षि भी रामायण की प्रसिद्ध पात्र उर्मिला के विषय में सोचना उचित नहीं समझता। लेखिनी चलाना ध्येय नहीं समझा। विश्वास नहीं होता जो हृदय कभी दया, सेवा, करुणा, ममता जैसे गुणों से युक्त रहता था वही उर्मिला के विषय में बोलना या लिखना उचित नहीं समझता।

**विशेष :**

लेखक ने कवियों की स्वच्छंद प्रवृत्ति एवं मनोवृत्ति का वर्णन किया है।

उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता का वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण के सृजन के मूल में निषाद द्वारा क्रौंच पक्षी के वध से उत्पन्न दया, क्रंदन ही था।

इस संसार में राई को पर्वत और पर्वत को राई करने की क्षमता परमेश्वर की है, लेकिन साहित्य जगत में विषय की महत्ता कवियों की मनःस्थिति पर निर्भर है।

वाल्मीकि को आदि कवि तथा कवियों का शिरोमणि भी कहा जाता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है।

उपेक्षित पात्र को महिमा मंडित करके महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मौलिकता का परिचय दिया है।

प्रसाद गुण है।

आंख उठाकर न देखना 'मुहावरा' है।

उसका चरित्र सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! ठस देवि की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुख वंचिता के विषय में इतना पक्षपात–कार्पन्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुति सुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापस जनों का शरीर सदैव शीत–ताप सहने के कारण कर्कश होता है –पर नहीं, आपकी गाथा पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता प्रेमी नहीं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युग के कर्णधर, शिरोमणि, भाषा परिष्कारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से अवतरित है।

**प्रसंग :** इस अवतरण में उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता, उपेक्षित भावना को मुखरित किया गया है। साथ ही उर्मिला के प्रति अपनी संवेदना, सहानुभूति का भाव भी व्यक्त किया है। यहाँ उर्मिला की विशेषताओं का वर्णन करते हुए द्विवेदी जी ने कहा –

**व्याख्या :** द्विवेदी जी का मानना है कि पति विहीन नारी की स्थिति जल विहीन सरिता के समान होती है। उसका सौभाग्य तभी सुरक्षित रहता है जब उसका पति परमेश्वर साथ रहता है। उसका मानना है कि जब भरत और शत्रुघ्न अपनी–अपनी पत्नियों के साथ अयोध्या में रहते थे तो वियोग का नामोनिशान न था। भगवान रामचंद्र जी के वनगमन के समय लक्ष्मण भी साथ गये। लक्ष्मण के बिना उर्मिला विरह से तड़पती रही। युगीन सहृदयों, महानुभावों ने केवल राम के जीवन पर दृष्टि को सीमित कर लिया उनकी दृष्टि उपेक्षित, पति प्रेम से वंचित उर्मिला को नहीं देख सकी। रामायण काल में अकेली उर्मिला ही ऐसी स्त्री थी जिसे पति का वियोग सहना पड़ा। उसके चरित्र में कहीं भी स्वच्छंदता एवं उच्छृंखलता देखने को नहीं मिलती। उसका चरित्र प्रशंसनीय होने पर भी वाल्मीकि ने रामायण में कहीं भी स्थान नहीं दिया। द्विवेजी जी आदि कवि वाल्मीकि को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे मुनि! आपने सभी सुखों से कोंसों दूर, देवि के समान पवित्र उर्मिला के साथ पक्षपात का रवैया क्यों अपनाया? क्या आपको उसके नाम से ईर्ष्या थी? क्योंकि उसका नाम इतना सुंदर, मधुर और सुनने में मनोरम, सुखदायी लगने वाला था। आपका संबंध कठोर तपस्या करने वालों से था शायद आप उर्मिला की कोमलता नहीं सह पाए। आपकी हृदयहीनता ने उर्मिला को कोई महत्त्व प्रदान नहीं किया। आप द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण को पढ़कर यह दृष्टिकोण पनपता है कि आपका यह ग्रंथ कठोर हृदय नहीं बल्कि करुणा के सागर का भंडार है। अर्थात् एक ओर ग्रंथ की करुणा और दूसरी ओर उर्मिला को महत्त्व न देना दो विरोधाभास से लगते हैं।

**विशेष :**

आचार्य महावीर प्रसाद जी की उर्मिला के प्रति सहानुभूति, संवेदना का चित्रण व्यक्त है।

कवि वाल्मीकि की त्रुटियों की ओर संकेत किया है।

उर्मिला के प्रति उपेक्षा एवं कीट तिरस्कार की भावना का वर्णन है।

हिंदू धर्मानुसार पत्नी का सुहाग पति ही होता है।

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की प्रधानता है।

प्रवाहमयी एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग है।

इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आंख भर देख भी न लेने दिया। जिस दिन राम लक्ष्मण, सीता देवि के साथ, चलने लगे– जिस दिन उन्होंने अपने परित्याग से अयोध्या नगरी को अंधकार में, नगरवासियों को दुःख में, और पिता को मृत्यु मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा, इतनी उपेक्षा।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यांश सरस्वती पत्रिका के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता नामक निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** कवि ह्रदय द्विवेदी जी ने उर्मिला के विषय में कवियों की उदासीनता, उपेक्षा को उजागर किया है। वाल्मीकि के 'रामायण' ग्रंथ को पढ़कर कवि को यह अहसास हुआ कि उर्मिला के दुःख को अनदेखा करना तर्क संगत नहीं हुआ। एक क्रौंच पक्षी का वध जिन्हें रामायण लिखने को प्रेरित कर सकता है तो फिर वह उर्मिला की दीनता, विकलता, उदासी को देखकर क्यों द्रवित नहीं हुए? इसी कथन पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी कहते हैं–

**व्याख्या :** भगवान रामचंद्र जी जब अयोध्या से वन गए तो पति वियोग में उर्मिला तड़पती रही। एक तो पति साथ नहीं है, दूसरी ओर जानकी भी अब उनके साथ नहीं है। जानकी अपने पति के साथ है, आज्ञाकारी लक्ष्मण राम के साथ में है। एकांतवास केवल उर्मिला के हिस्से में आया है। कवियों को संबोधित करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि हे कवियो! आपकी दृष्टि इस अछूते पक्ष की ओर क्यों नहीं गई। दुःखी स्थिति को देखकर कवियों की आंखें क्यों नहीं खुली। 14 वर्ष के लिए लक्ष्मण जब अयोध्या से वन जा रहे थे तब भी आपने उर्मिला को लक्ष्मण से दूर ही रखा। जब तीनों राम, लक्ष्मण और जानकी अयोध्या को अंधकार में डुबोकर जा रहे थे, समस्त अयोध्यावासी दुःख के सागर में गोते लगा रहे थे। उनके गमन से पिता दशरथ भी दुःख में डूब गए थे। मृत्यु ने अपनी दस्तक देना प्रारंभ कर दिया था। इन प्रसंगों को अनदेखा कर देना आदि कवि वाल्मीकि को शोभा नहीं देता। उन्हें दुःख में डूबी करुणामयी उर्मिला याद नहीं आई। उसकी पति वियोग में क्या स्थिति होगी? यह भी विस्मृत कर दिया। उसका एक मात्र सहारा जानकी थी वह भी रामचंद्र जी के साथ चली गई। पति वियोग में एकांत में आंसू बहाने पर विवश थी। उसकी अवस्था का चित्रण न करके कवियों तथा महर्षि वाल्मीकि ने ह्रदयहीनता का परिचय दिया है। अर्थात् सामान्य कवियों के साथ आदि कवि वाल्मीकि भी 'रामायण' में उर्मिला को स्थान न दे सके। यह उदासीनता एवं उपेक्षा वाल्मीकि के बारे में प्रश्न खड़ा करती है।

**विशेष :**

उर्मिला के प्रति द्विवेदी जी की सहानुभूति का चित्रण है।

कवियों के स्वच्छंदता एवं उच्छृंखल भाव को व्यक्त किया गया है।

राम के वन जाने से अयोध्या वासियों का दुःखी होना स्वाभाविक है क्योंकि राम भावी अयोध्या नरेश थे तथा

दशरथ का सहारा थे।

अयोध्या वासियों की विरह वेदना का चित्रण है।

करुण रस का चित्रण है।

प्रसाद गुण है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

मुहावरेदार भाषा का चित्रण है।

'उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मोसर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी 14 वर्ष पति–वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने, रामचंद्र और जानकी के लिए अपने सुखसर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अंतर्दर्शी आदि कवि के शब्द भंडार में दरिद्रता।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण युगप्रवर्त्तक, भाषा के प्रचारक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता नामक निबंध से उदृधृत है।

**प्रसंग :** इस गद्यावतरण में उर्मिला के प्रति कवियों की उपेक्षा दृष्टि को रेखांकित किया गया है तथा साथ ही अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए लेखक कहते हैं –

**व्याख्या :** पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान रामचंद्र जब अयोध्या से वन जाने लगे तो उनके साथ आदर्श भ्राता भी अपनी इच्छा को नहीं रोक सके। सेवा भाव के फलस्वरूप जाना श्रेयस्कर समझा। स्वयं की इच्छाओं का दमन करने में इति श्री समझी। समर्पण भाव के फलस्वरूप महानता को प्राप्त हुए। उर्मिला के त्याग के सामने लक्ष्मण की त्याग भावना टिक न सकी। उसने अपने जीवन साथी का वियोग सहा। वह पत्नी (उर्मिला) जो पति (लक्ष्मण) को प्राणों से अधिक चाहती थी वैवाहिक क्षण भी आंखों के सामने आ रहे थे। काल की क्रूरता भी जिसे भयभीत न कर सकी थी, ऐसी उर्मिला ने अपने सभी सुखों का परित्याग कर दिया। अपने आराध्य को भगवान राम के चरणों में समर्पित कर दिया। उर्मिला का त्याग लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी था। द्विवेदी जी का मानना है कि जो वैवाहिक सुख उर्मिला को मिलना चाहिए था वह न मिल सका। जिन भौतिक सुखों की उत्तराधिकारी थी उनसे वंचित होना ही भाग्य में लिखा था। जो सुख वैवाहिक बेला में मिलना चाहिए था वह क्या 14 वर्ष पश्चात् मिल सकता है? अर्थात् कभी नहीं। द्विवेदी जी आगे कहते हैं कि रतिक्रिया एवं वैवाहिक क्षण के लिए कम उम्र का होना अनिवार्य होता है। आयु बढ़ने के साथ बुद्धि बढ़ने लगती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी कवियों की उदासीनता को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि वाल्मीकि का काव्य भी इस दोष से मुक्त न हो सका। उन्होंने भी राम और सीता का बखान करना ही श्रेयस्कर समझा। उर्मिला की विरह वेदना से उनका हृदय नहीं पिघला। जिस उर्मिला ने अपने स्वार्थ को त्यागकर पति के साथ स्वयं न रहकर राम के साथ भेज दिया। स्वयं दुःखों के पहाड़ को झेला। दिनरात आंखों से आँसू बहते रहे, ऐसी त्यागनी उर्मिला की कथा को चित्रित करने में कवियों ने अनिच्छा का भाव प्रदर्शित किया। लगता है कवि के पास शब्दों की दुनिया उजड़ गई हो। दो शब्दों में उर्मिला का बखान करने से लगता है उनका अर्जित यश कम हो जाता।

**विशेष :**

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण है।

त्याग भावना के कारण उर्मिला का महान व्यक्तित्व पाठकों की आंखों का आकर्षण रहा।

वैवाहिक जीवन का सुखद आनंद उठाने के लिए युवा मन के साथ स्वस्थ तन का होना भी आवश्यक है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

प्रसाद गुण है।

मुहावरेदार भाषा की प्रधानता है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

उर्मिला भी पति परायणता धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने वन गमन की हठ, जानबूझकर नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य–युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। वाल्मीकि को ऐसी उच्चादर्श रमणी का विस्मरण करते देख किस कविता मर्मज्ञ को आंतरिक वेदना न होगी।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** उर्मिला के प्रति कवियों का उपेक्षा भाव देखकर द्विवेदी जी व्यथित हैं। अपनी संवेदना को व्यक्त करते हैं साथ ही आदि कवि वाल्मीकि की अदूरदर्शिता का भी परिचय देते हैं कि उन्होंने भी उर्मिला के महान व्यक्तित्त्व को अनदेखा कर दिया। द्विवेदी जी उर्मिला के पतिव्रत प्रेम तथा धर्म शिक्षा का बखान करते हुए कहते हैं –

**व्याख्या :** भगवान रामचंद्र जी ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर तथा लक्ष्मण ने भाई के प्रति अगाध प्रेम के वशीभूत होकर 14 वर्ष के लिए वन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वयं को सुख सुविधाओं से वंचित कर राम के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया। पति के समान उर्मिला भी महान गुणों से युक्त थी। जानकी सीता के समान ही उर्मिला की शिक्षा–दीक्षा हुई थी। एक ही परिवार और समान संस्कारों में जीवन व्यतीत हुआ था। उसका भी पति के प्रति प्रेमभाव जानकी से कम नहीं था। उर्मिला ने स्वयं जानबूझकर साथ जाने की जिद न करके महानता का परिचय दिया। उर्मिला ने ऐसा करके एक ओर त्याग का परिचय दिया दूसरी ओर राम के साथ रहने से जो लज्जा, संकोच का भाव था वह भी समाप्त हो जाता। मर्यादा का पालन करना मुश्किल होता। द्विवेदी जी का मानना है कि अगर लक्ष्मण उर्मिला को साथ ले जाते तो भाई की आज्ञा का पालन तथा सेवा भाव का दायित्व बोध के साथ पालन नहीं कर पाते। उर्मिला ने दूरगामी परिणाम को जानकर ही साथ जाने की जिद न की। यह गुण उसके व्यक्तित्व में चार–चाँद लगा देता है। ऐसी महान व्यक्तित्व वाली उर्मिला के विषय में वाल्मीकि ने रामायण में कुछ न लिखकर उचित नहीं किया। सहृदय पाठकों को रामायण पढ़ते समय अगर उर्मिला का वर्णन नहीं मिलेगा तो निराशा ही हाथ लगेगी। आंतरिक वेदना का सामना करना पड़ेगा। कवि को उच्च आदर्शों से युक्त स्त्री के बारे में काव्य में स्थान देकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए था।

**विशेष :**

द्विवेदी जी ने उर्मिला के प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर श्रद्धा का परिचय दिया है।?

उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है।

लक्ष्मण की राम, सीता के प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त की है।

व्यक्तित्त्व का निर्माण संस्कारों से सुसज्जित होकर ही श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

आदर्श गुणों के कारण ही उर्मिला का चरित्र जानकी सीता की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी ळै।

अविधा शब्द शक्ति है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

'आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक 'लक्ष्मण' पर इतनी सख्ती क्यों? अपने कमण्डलु के करुणावारि की एक भी बूंद आपने उर्मिला के लिए न रखी। सारा का सारा कामण्डलु सीता को समर्पित कर दिया। एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते अथवा उसी के मुंह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम जानकी के वनवास और अपने पति के वियोग के संबंध में क्या–क्या भावनाएँ उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थीं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण हिंदी भाषा के विद्वान, सरस्वती पत्रिक के यशस्वी संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इस गद्यावतरण में भक्तिकाल के राम भक्ति धारा के शिरोमणि महाकवि, तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में उर्मिला को महत्त्व न देने का प्रसंग वर्णित है। आचार्य द्विवेदी जी महाकवि तुलसीदास को संबोधित करते हुए कहते हैं –

**व्याख्या :** आपने अपने महान ग्रंथ 'रामचरितमानस' में राम–सीता के साथ उर्मिला पति (लक्ष्मण) के वन गमन वृत्तांत को उद्घाटित न करके उपेक्षा का व्यवहार प्रदर्शित किया है। जो लक्ष्मण 14 वर्ष के लिए अयोध्या से राम–सीता के साथ जा रहे थे ऐसी स्थिति में भी उर्मिला से मिलने का अवसर प्रदान नहीं किया। उर्मिला के विषय में उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करना उचित नहीं है। तुलसीदास जी ने भावना के कमण्डल से करुणा रूपी जल की एक बूंद भी उर्मिला के लिए अर्पित नहीं की। तुलसीदास के उदात्त हृदय में उर्मिला के लिए करुणा का एक अंश भी नहीं मिला। उनका ध्येय राम–सीता की महिमा का गुणगान करना ही था। द्विवेदी जी कहते हैं कि अधिक वर्णन न करके कम से कम एक ही चौपाई में उर्मिला की वेदना तथा दयनीय स्थिति का वर्णन कर दिया जाता या फिर लक्ष्मण के मुख से एक संवाद ही कहलवा दिया होता। लेकिन तुलसीदास जी ने ऐसा न करके उर्मिला के साथ अन्याय किया। अगर तुलसीदास जी अपने कर्त्तव्य का पालन करते तो उर्मिला के चरित्र वर्णन सुनकर पाठक को संतुष्ठि हो जाती। पाठक भी उसके मुख से सुन लेते कि राम–सीता के वनवास जाने और अपने पति लक्ष्मण के वियोग के संबंध में उसके मन में कौन–कौन से भाव पैदा हुए हैं। तुलसीदास जी ने उर्मिला को जनकपुर से अयोध्या पहुँचाकर मुंह फेर लिया जो उचित नहीं था।

**विशेष :**

उर्मिला के प्रति संवेदना का भाव व्यक्त किया है।

महाकवि तुलसीदास की उर्मिला विषयक उपेक्षा का वर्णन किया है।

रामचरित मानस महाकाव्य की त्रुटियों की ओर संकेत किया है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति है।

तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।

### 4.3.2 विशेषताएँ :

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रामायण के उपेक्षित पात्र उर्मिला विषयक वृतांत को प्रस्तुत कर पाठकों, साहित्य मर्मज्ञों का ध्यान आकर्षित कर दायित्वबोध से अवगत कराया है। राम को सभी पलकों पर बिठाते हैं लेकिन उर्मिला को फूटी आंखों से नहीं देखा। प्रस्तुत निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) कवियों के स्वभाव का चित्रण** – सामान्य मनुष्यों की भाँति कवियों का स्वभाव उन्मुक्त व स्वच्छंद प्रवृत्ति का होता है। ये मन के राजा होते हैं अगर इच्छा हुई तो राई को पर्वत समान गौरवान्वित कर दिया अगर मन ने नहीं चाहा तो पर्वत को भी आंख उठाकर नहीं देखा। साधारण कवियों की अपेक्षा महान कवि के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। आदि कवि वाल्मीकि भी इससे अछूते न रह सके उन्होंने उर्मिला के बारे में अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त न कर स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचय दे दिया है।

**(ख) उर्मिला की विशेषताएँ** – उर्मिला नारियोचित गुणों से युक्त थी। वह सीता की आदर्श बहन थी, सहनशीला, उदार व्यक्तित्व वाली, त्यागमयी, दुःखी मनःस्थिति वाली, भाग्य हीना, भविष्य दृष्टा थी।

**(ग) कवियों का उपेक्षित व्यवहार** – उर्मिला कवियों की उपेक्षा का शिकार बनी। सर्वगुणसंपन्न, आदर्श पत्नी, त्यागमयी होना कवियों की दृष्टि से ओझल हो गया। वाल्मीकि ने राम को महिमा मंडित किया लेकिन उर्मिला को अनदेखा कर हृदयहीनता का परिचय दिया। राम वनगमन के समय उर्मिला भी पति वियोग से तड़प रही थी, किसी ने उसकी पुकार को नहीं सुना। पतिप्रेम और पति पूजा का गुण सीता के साथ उर्मिला में भी विद्यमान था। महान कवि तुलसीदास ने भी अपनी स्नेहमयी दृष्टि से उर्मिला को न देखा। लक्ष्मण को उर्मिला से मिलने का अवसर न देकर पक्षपात किया। लक्ष्मण तो राम के उपासक थे उन्होंने भी पत्नी की ओर ध्यान नहीं दिया।

**(घ) भवमूति का योगदान** – उर्मिला विषयक वृतांत पर भवमूति ने विहंगम दृष्टि डाली। उन्होंने उर्मिला की विरह यातना को देख सीता द्वारा बहलवाया– लक्ष्मण कौन है? लेकिन लक्ष्मण मुख से कुछ न बोल सके, उन्होंने मौन भाव से उर्मिला के चित्र को हाथ से ढक लिया अर्थात् लक्ष्मण ने अपनी मूक वाणी से सब कुछ कह दिया जिसे पढ़कर पाठक राहत की सांस लेता है।

### 4.3.3 भाषा शैली :

द्विवेदी के निबंधों में गंभीरता का स्वर मुखरित होता है। वे भाषा के संशोधक हैं। व्याकरण सम्मत भाषा के पक्षपाती हैं। ज्ञानात्मक व साहित्यिक निबंधों में गंभीर व्यक्तित्व की छाप है। व्यवस्थित वाक्य, विराम चिन्हों का प्रयोग, विचारों का क्रमबद्ध विवेचन, उर्दू शब्दों के प्रयोग के हामी हैं, संस्कृतनिष्ठ भाषा के दर्शन होते हैं।

**(क) संस्कृत शब्दों की छटा** – मा निषाद, अल्पादल्पतरा, श्रुतिसुखद, हा हविधिलसते, दुःखाश्रुमोचन, आत्मसुखोत्सर्ग, नाना पुराणनिगमागसम्यत, बचने दरिद्रताः।

**(ख) मुहावरा** – आंख उठाकर न देखना, पानी डालना।

**(ग) उपमा** – छिन्न मूल शाखा की तरह।

**(घ)** आग से अधिक संताप में अतिशयोक्ति अलंकार है।

**(ङ)** खुशी, जरूरत, सख्ती, वक्त उर्दू का प्रयोग है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विचारात्मक, वर्णनात्मक, समीक्षात्मक शैली का प्रयोग देखने को मिलता है।

वर्णनात्मक शैली की छटा दृष्टव्य है– 'कवि स्वभाव से ही उच्छृंखल होते हैं, वे जिस तरफ झुक गए। जी में आया तो राई का पर्वत करा दिया, जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आंख उठाकर न देखा। जिनके मुख से मा निषाद इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वहीं पर दुःख कातर मुनि रामायण निर्माण करते समय, एक नव परणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया।

### 4.3.4 निष्कर्ष :

भाषा का परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने वाले द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक, सरस्वती पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उर्मिला विषयक वृतांत पर अपनी विहंगम दृष्टि से विचार व्यक्त किए हैं –

कवि स्वभाव से ही हरफन मौला तथा स्वच्छंद होते हैं, मन के राजा होते हैं। उनकी दृष्टि जिस तरफ झुक गई उसी विषय में चार–चाँद लगा देते हैं, वे चाहें तो राई का पर्वत और पर्वत को राई बना देते हैं। यह गुण साधारण से साधारण व्यक्ति तथा कवि में भी पाया जाता है। विशिष्ट कवि का क्या कहना। आदि कवि वाल्मीकि में यह गुण देखकर कवि को दुःख हुआ, क्योंकि क्रौंच पक्षी के विलाप से महान ग्रंथ की रचना कर दी, लेकिन उर्मिला के दुःख को अपनी आंखों से ओझल कर दिया। उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा, उन्होंने कैसे नव वधू को उपेक्षित कर दिया।

वह उर्मिला जो गुणों का भंडार थी, सीता की बचपन की सहेली थी। जिसने अग्नि से भी दहकता पति वियोग झेला। ऐसी बाल वियोगिनी को अनदेखा कर दिया। जिसका नाम कर्ण प्रिय, सुखद तथा मनोहर था पर भाग्य की छोटी उर्मिला मुनि वाल्मीकि की निगाहों से ओझल हो गई।

राम वन गमन के समय भी उर्मिला के लिए पति (लक्ष्मण) के दर्शन न हुए। रामचंद्र जी के राज्याभिषेक की तैयारियों के समय प्रसन्न उर्मिला की सारी खुशियाँ विरह की भट्टी में जलकर भस्म हो गई। कवि ने राम के बिना अयोध्या, प्रजा, राजा दशरथ को देखा, लेकिन उर्मिला विरह की भट्टी में जल रही थी देखा तक नहीं। लक्ष्मण को आदर्श भाई का साथ मिल गया लेकिन उर्मिला निर्निमेष दृष्टि से पति को जाता देखती रही। अपने हृदय पर पत्थर रख लिया। सांसारिक सुखों से वंचित कर दी गई। सीता और उर्मिला एक घर की थी फिर उर्मिला के साथ अन्याय क्यों किया।

वन गमन के समय स्वयं धैर्य का परिचय देकर उर्मिला ने सभी का मन मोह लिया। पति लक्ष्मण की आराध्य–युग्म की सेवा में विघ्न नहीं डालना चाहा। सीता के समान वन जाने के लिए जिद् नहीं की। त्यागमयी के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित कर कवियों ने हृदय हीनता का परिचय दिया है।

रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास ने भी उर्मिला को महत्त्वहीन ही समझा। राम (आराध्य) के भाई के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित कर हृदयहीनता का परिचय दिया है। अपनी करुणामयी दृष्टि से वंचित कर दिया। जनकपुर से साकेत पहुंचकर विस्मृत करना अच्छा नहीं लगा।

भूवमूति ने उर्मिला को महत्व प्रदान कर अपनी सहृदयशीलता का परिचय दिया। सीता लक्ष्मण से पूछती है कि कौन है जो तुम्हारी प्रतीक्षा का रही है? किंतु लज्जालु लक्ष्मण ने मौन भाषा में उर्मिला के विषय में बताकर अपना काम समाप्त कर दिया। अपनी धर्मपत्नी उर्मिला के चित्र को हाथ से छिपाकर महत्त्व को कम कर दिया।

द्विवेदी जी ने उर्मिला विषयक वृतांत को प्रस्तुत कर पाठकों एवं शोधार्थियों की दृष्टि उर्मिला पर केंद्रित कर महत्त्वपूर्ण गौरव प्रदान किया है।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

9. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किस पत्रिका का संपादन किया?

10. पतिविहीन नारी की स्थिति कैसी होती है?

11. कवियों का स्वभाव कैसा होता है?

12. उर्मिला किसकी सहेली थी?

13. उर्मिला के बारे में किसने वर्णन किया?

14. वाल्मीकि रामायण के सृजन का कारण क्या था?

15. उर्मिला किसकी पत्नी थी?

16. राम का वनवास कितने वर्ष का था?

## 4.4 मजदूरी और प्रेम (सरदार पूर्ण सिंह)

द्विवेदी युग के निबंधकारों में श्रम की महत्ता प्रतिपादित करने वाले नैतिक व सामाजिक विषयों पर लेखिनी चलाने वाले मानवता की प्रतिष्ठा के समर्थक कर्म की उपयोगिता सिद्ध करने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह के निबंध समाज के दर्पण हैं। कम निबंध लिखे लेकिन सारगर्भित संस्कृति के प्रति समर्पित भाव उनके निबंधों की विलक्षणता रही है। कन्यादान, पवित्रता, सच्ची वीरता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम उनके श्रेष्ठ निबंध हैं। मजदूरी और प्रेम निबंध लिखने के मूल में किसानों की सादगी, गडरिए का भोलापन, प्रेम रस का परिपाक, क्रियाशीलता पर बल, मजदूर और फकीर के स्वभाव का वर्णन, कल्याणकारी जीवनबोध, यंत्रीकरण के दुष्परिणामों का वर्णन, मानवतावाद की प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों का विवेचन कर अपनी अभिव्यक्ति से अवगत कराना है।

### 4.4.1 व्याख्या खंड :

हल चलाने और भेड़ चराने वाले प्रायः स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनका हवनकुंड है। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूं के लाल–लाल दाने इस अग्नि की चिंगारियों की डालियाँ सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग के माली का रूधिर याद आ जाता है। उसकी मेहनत के कण–जमीन में गिरकर उगे हैं और हवा तथा प्रकाश की सहायता से वे मीठे फलों के रूप में नज़र आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में आहुति सा दिखाई देता है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रसिद्ध गद्य लेखक, नैतिकता के समर्थक, श्रम की उपयोगिता को सहर्ष स्वीकार करने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** भारत कृषि प्रधान देश है। किसान कृषि का देवता, कर्ता–धर्ता माना जाता है। अपने खून पसीने की गाढ़ी कमाई से अन्न पैदा कर भारतीयों की पेट की अग्नि को शांत करता है। किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह कहते हैं –

**व्याख्या :** मनुष्य के स्वभाव से व्यक्तित्त्व का आभास सहज ही हो जाता है। स्वभाव और व्यक्तित्त्व अन्योन्याश्रित होते हैं। किसान और गड़रिये का स्वभाव लगभग एक जैसा होता है। किसान को हल चलाने के कारण हलधर भी कहा

जाता है। भेड़ों के खानपान की व्यवस्था करना गड़रिये का कार्य होता है। किसान अन्न पैदा करने के लिए अथक परिश्रम करता है। शारीरिक कष्टों को सहकर खेतों को हरा–भरा बनाता है। खेत उनकी हवनशाला होते हैं। चावल की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि चावल के लंबे और सफेद दाने हवन कुंड से निकलने वाली अग्नि की पलटों, किरणों के समान होते हैं। गेहूं के दाने लालिमायुक्त होने के कारा आग की चिंगारियों की डालियों के समान सुशोभित होते हैं। बागों में पुष्पित और फलित अनार को देखकर माली का लहू याद आ जाता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से माली की मेहनत को दर्शाता है। माली के परिश्रम का प्रतिफल अनार के रूप में सामने है। ईश्वर प्रदत्त हवा और प्रकाश ने इन फलों को मधुर बना दिया है। पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि किसान के दर्शन अनाज में, फूलों में, फलों में होते हैं लगता है किसान ने अपने प्राणों की आहुति देकर इनको पल्लवित किया है।

**विशेष :**

किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है।

लेखक पूर्ण सिंह जी ने किसान और गड़रिये का स्वभाव समान माना है।

हल चलाने के कारण किसान को 'हलधर' भी कहा जाता है।

किसान के परिश्रम की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

कहा जाता है 'मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक' उसी प्रकार किसान का कार्यक्षेत्र खेत होते हैं।

उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(क) गेहूं के लाल दाने चिंगारियों की डालियों से।

(ख) चावल के लंबे और सफेद दाने हवन कुण्ड की ज्वाला की किरणों के समान

(ग) किसान मुझे अन्न में, फूल में फल में आहुति सा।

यह यथार्थ है कि किसान के परिश्रम में जब तब प्राकृतिक हवा और प्रकाश का योगदान न होगा तब तक बीज का उगना, पल्लवित होना, फूलना और फलना संभव नहीं है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृत, उर्दू व अरबी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

किसान का क्रिया–कलाप आहुति से युक्त माना है।

यज्ञ करने के लिए हवन कुण्ड बनाया जाता है तत्पश्चात् सामग्री को हवनकुण्ड में प्रज्वलित अग्नि में डाला जाता है जिसमें मानसिक शुद्धि के साथ वातावरण की पवित्रता बनी रहती है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा की छटा दृष्टव्य है।

अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरीय प्रेम का केंद्र है। उसका सारा

जीवन पत्ते–पत्ते में, फूल–फूल में विचर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक तरह का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और प्रकाश की निरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा, जप और तप यह नहीं करता, संध्या वंदनादि इसे नहीं आते, ज्ञान–ध्यान का इसे पता नहीं, मस्जिद गिरजा, मंदिर से इसे सरोकार नहीं। केवल साग–पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठंडे चश्में और बहती नदियों के शीतल जल से अपनी प्यास बुझा लेता है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध गद्यकार, द्विवेदी युग के निबंधकार, अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध के हल चलाने वाले का जीवन' खंड से अवतरित है।

**प्रसंग :** श्रम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पूर्ण सिंह जी ने किसान की सादगी, निश्छलता का वर्णन करते हुए लिखा है –

**व्याख्या :** लेखक कहता है कि यह संसार ब्रह्मा की इच्छा का ही परिणाम है। अर्थात् ब्रह्मा जी ने अपने प्रेम के वशीभूत होकर ही इस संसार का सृजन किया। इसीलिए ब्रह्मा जी को सृष्टा भी कहा जाता है। लेखक ने किसान की तुलना व समानता ब्रह्मा से की है क्योंकि दोनों का स्वभाव लगभग समान ही है। किसान भी ब्रह्मा के समान संसार में अनाज को पैदा करता है। ब्रह्मा के बनाए संसार का अस्तित्व भोजन के बिना संभव नहीं है। अपने परिश्रम के बल पर ईश्वर के निकट पहुँच जाा है। अर्थात् जो व्यक्ति अपना कार्य स्वयं करते हैं उनकी ईश्वर भी मदद करता है। खेत के कण–कण में उसकी आत्मा का वास होता है। उसका समस्त जीवन पत्तों, फूलों और फलों के रखरखाव में व्यतीत हो जाता है। खेतों में फैली हरियाली, फलते वृक्ष किसान की महिमा का गुणगान करते हैं। किसान की तुलना वृक्ष से करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि वृक्ष के समान किसान भी मौन व्रत रखते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार वृक्ष अपने फूल और फल दूसरों को प्रदान करके कभी उसका बखान नहीं करते, ठीक उसी प्रकार किसान भी कभी अपनी मेहनत की गाथा को जुबान पर नहीं लाता। वह वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश से ऊर्जा ग्रहण कर अपने शरीर को निरोगी बनाता है। किसान के निश्छल व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह जी ने कहा है कि किसान का दिल सादा होता है। अहंकार, छलकपट, आडंबरों तथा प्रपंचों से दूर होता है। इसीलिए वह न तो विद्या ग्रहण करता है न जप तप करके बाह्याडंबर का दिखावा करता है। उसे प्रातः व संध्या वंदना की आवश्यकता नहीं पड़ती। मंदिर, मस्जिद तथा गुरुद्वारे का कभी दर्शन नहीं करता। उसे समय पर जो मिल जाए वही रूखा–सूखा साग–पात खाकर अपनी भूख मिटा लेता है। चश्में और नदियों के ठंडे जल से अपनी प्यास बुझा लेता है।

**विशेष :**

किसान की विशेषताओं का उल्लेख है।

सादगी किसान के जीवन का अंग होती है।

किसान की तुलना ब्रह्मा से की है।

अपनी खेती की देखभाल संतान के समान करता है।

वृक्ष और किसान का स्वभाव एक सा होता है।

किसान की निरोगता का कारण प्राकृतिक धरोहर है।

किसान में आत्मसंतोषी प्रवृत्ति पाई जाती है।

अब स्थिति बदल गई है। शिक्षित किसान अपनी खेती को वैज्ञानिक ढंग से करने लगे हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है –

'देख पराई चूपड़ी मत लालचावै जी

रूखी–सूखी खाय कै ठण्डा पानी पी।'

मानव शरीर की रचना इन्हीं पाँच तत्त्वों से की गई है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृत फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

किसान और वृक्ष दोनों का जीवन परमार्थ युक्त होता है। परंतु यह दुर्भाग्य ही है कि किसान आत्महत्या करने पर विवश है।

ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे–मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं, तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कम्बली कंधे पर, एक लंबी लाठी हाथ में लिए हुए गौवों का मित्र, बैलों की हम जोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों को पालने वाला समाज के पुष्पोद्यान का माली जा रहा है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के प्रबुद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा 'मजदूरी और प्रेम' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** श्रम की महत्ता तथा भोले किसान के जीवन पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं–

**व्याख्या :** लेखक का मन किसान की सादगी से प्रभावित होकर अभिव्यक्ति के लिए विवश है। जिस प्रकार प्रकृति में कृत्रिमता का लेशमात्र भी भग नहीं होता, ठीक उसी प्रकार किसान का जीवन सादगी की दास्तां बयान करता है। लेखक का मानना है कि किसान राजा से कम नहीं होता, वास्तविक राजा कहलाने का गौरव किसान को ही है। प्रातः उठकर गायों की सेवा करना अपना दैनिक कर्त्तव्य मानता है। उनकी सेवा से संतान को शुद्ध दूध पीने को मिलता है। किसानों को गोपाल भी कहा जाता है। किसान के सामने लेखक के साथ सामान्य जन भी श्रद्धा से अपना मस्तक झुका लेता है। छल, कपट, प्रतिकार पास से नहीं गुजरता। जब किसी संन्यासी या साधु के दर्शन होते हैं तो किसान की निर्मलता रहित मूर्ति आंखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। ऐसा लगता है मानो किसान ही साधु के वेश में साक्षात् सामने खड़ा हो। किसान की वेशभूषा एवं व्यवहार का वर्णन करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि किसान का सिर नंगा रहता है। पैरों में जूतियाँ नहीं मिल पातीं, सिर पर रखी टोपी उसकी अस्मिता की पहचान होती है। कमर में लंगोटी ही वस्त्र की सूचक होती है। कंधे पर काली कमली रखना नहीं भूलता जिसे चादर भी कहा जाता है। जंगली जानवरों से आत्मरक्षा के लिए लाठी पास रखता है। गायों के साथ हमजौली सा व्यवहार करता है। पक्षियों की हिफाजत करना धर्म समझता है। राजा और महाराजाओं की पेट की भूख को शांत

करता है तथा बादशाह को सिंहासन पर बिठाता है। भूखे को भोजन और प्यासे को पानी पिलाना कर्त्तव्य समझता है। सामाजिक व्यवस्था का पुरोधा होता है। खेतों की रक्षा माली के समान करता है। खेतों का वास्तविक मालिक किसान ही होता है। स्वयं के अस्तित्व की चिंता न करके दूसरों के अस्तित्व की रक्षा करता है। इन्हीं गुणों के कारण उसकी फकीर से तुलना करना तर्क संगत है।

**विशेष :**

किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

किसान और फकीर की तुलना कर समानता का वर्णन किया है।

भगवान श्री कृष्ण को भी गोपाल नाम से जाना जाता है।

त्याग भावना के कारण ही किसान का दृष्टिकोण सर्वजनहिताय का होता है।

लेखक ने किसान का चित्र उपस्थित कर दिया है। चित्राात्मकता के दर्शन होते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि करने वाला कृषक होता है। किसान की खुशहाली से ही देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रसाद गुण है।

अविद्या शब्द शक्ति है।

संस्कृत और उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।

भाषा में सजीवता व प्रवाह का गुण विद्यमान है।

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उनकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगंध आती है। रामेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला–कुशलता को देख इतनी सदियों के बाद भी उनके अंतःकरण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किंतु उसमें साथ में छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं, परंतु यंत्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उनमें और हाथ के चित्रों में उतना ही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण द्विवेदी युगीन निबंध परंपरा को प्रखर बनाने वाले अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम निबंध के प्रेम मजदूरी खंड से अवतरित है।

**प्रसंग :** परिश्रम ही सफलता का मूल मंत्र है। लेखक ने हस्तकला की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा है –

**व्याख्या :** कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म होता है। निष्क्रिय जीवन आलस्य को बढ़ावा देता है। संसार में उन्हीं देशों ने प्रगति की है जिन्होंने अपनी क्रियाशीलता को बनाए रखा है। पूर्ण सिंह का मानना है कि जो कार्य मनुष्य के हाथों से किया जाता है उसमें उसकी आत्मीयता एवं रागात्मक बोध प्रदर्शित होता है। उसमें उसकी पवित्र आत्मा का निवास होता है। अपने किये गए कार्यों को फलित देखकर मंत्र मुग्ध हो जाता है। जिस प्रकार रामेल द्वारा बनाए गए चित्र एवं क्रियाशीलता सदियों बाद भी मनुष्य के अंतःकरण को बरबस आकृष्ट कर लेती है काल का प्रभाव भी इन चित्रों के सामने वाष्प के समान उड़ जाता है। चित्र के साथ चित्रकार की मनोवृत्ति, स्वभाव एवं लगन का आभास होने लगता है। उनके चित्र चित्रकार की आत्मा के दर्शन करा देते हैं। यंत्रीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए पूर्ण सिंह जी ने कहा है कि मशीनीकरण से बने चित्रों में कृत्रिमता का गुण अवश्य दिखाई देता है। यंत्र

और मनुष्य के चित्रों में उतना ही अंतर होता है जितना कि बस्ती और श्मशान में होता है।

**विशेष :**

लेखक ने यंत्रीकरण का विरोध कर मानव की उपयोगिता सिद्ध की है।

रामेल के चित्र काल की सीमा तोड़कर प्रत्येक युग में आकृष्ट करते रहेंगे।

मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

मनुष्य को बस्ती और यंत्र को श्मशान के रूप में चित्रित कर भावी पीढ़ी को सचेत किया है।

लेखक का विश्वास है कि यंत्रों की प्रगति की कामना करना मनुष्य को बेकारी की भीड़ में खड़ा कर देना है।

तत्सम् और तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वर्णात्मक शैली अपनाई गई है।

प्रसाद गुण है।

हाथ की मेहनत से चीज में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ। जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द–गिर्द की घास–पात खोदकर मैं साफ करता हूँ, उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बंद किये हुए अचार या मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मुर्दे को जिंदा करने की शक्ति आ जाती है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत अवतरण द्विवेदी युग के श्रेष्ठ 'आत्म व्यंजक निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम नामक निबंध के 'प्रेम मजदूरी' खण्ड से अवतरित है।

**प्रसंग** : परिश्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं –

**व्याख्या :** जो वस्तु मनुष्य स्वयं बनाता है, निर्माण करता है, अपने मनोभावानुकूल वस्तु को स्वरूप प्रदान करता है, उसमें विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद उसे आत्मिक शांति प्रदान करता है। मशीनों द्वारा निर्मित वस्तुओं में आनंद का संचार नहीं होता। प्रेम एवं आत्मीयता के दर्शन मनुष्य की सहभागिता को दर्शाते हैं। लेखक स्वयं की सहभागिता को दृष्टिगत रखकर अपना वक्तव्य स्पष्ट करता है कि मैं आलू को बोता हूँ और खाद–पानी की व्यवस्था करता हूँ। मेरे आलू का उत्पादन बड़े पैमाने पर हो इसके लिए मैं स्वयं उसमें उगी खरपतवार को अपने हाथों से उखाड़कर साफ करता हूँ, तत्पश्चात् उत्पादित वस्तु (आलू) को खाने में जो रसानुभूति प्राप्त होती है उसका कोई मोल नहीं है। टीन में बंद अचार या मुरब्बे में भी उसको प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह आलू मेरा अपना है उसमें मेरा परिश्रम मिश्रित है। लेखक का विश्वास है कि जिस वस्तु के उत्पादन में मनुष्य के स्नेह से युक्त हाथों का योगदान होगा वह वस्तु रसात्मकता से पूर्ण होगी। क्योंकि उस वस्तु में मन की पवित्रता के साथ प्रेम भी होगा। निष्क्रिय वस्तुएँ भी मूल्यवान हो जाती हैं, मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। प्रेम भाव का स्वरूप स्वयं निर्मित वस्तुओं में प्रत्यक्ष झलकता है, जबकि मशीनीकरण से उत्पादित वस्तुएँ मनुष्यों के व्यापारिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं।

**विशेष :**

लेखक मानव निर्मित वस्तुओं की उपयोगिता सिद्ध कर कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना चाहता है।

मशीनीकरण से निर्मित वस्तुओं को त्याज्य बताया है।

श्रम की उपयोगिता सिद्ध की गई है।

फारसी, उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

तत्सम शब्दावली युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।

अविधा शब्द शक्ति है।

आजकल भाप की कलों का दाम हजारों रुपया है, परंतु मनुष्य कौड़ी के सौ–सौ बिकते हैं। सोने और चांदी की प्राप्ति से जीवन का आनंद नहीं मिल सकता। सच्चा आनंद तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाए तो फिर स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य पूजा ही सच्ची ईश्वर–पूजा है। मंदिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट, पत्थर, चूना कुछ भी कहो आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मंदिर, मस्जिद, गिरजा और पौथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित मजदूरी और प्रेम निबंध से मजदूरी और कला खण्ड से अवतरित है।

**प्रसंग :** लेखक ने मशीनीकरण का विरोध कर कुटीर उद्योगों को महत्त्व प्रदान कर भारतीय संस्कृति के दिग्दर्शन के साथ मानवतावादी भाव व्यक्त किया है।

**व्याख्या :** अध्यापक पूर्ण सिंह का मानना है कि वैज्ञानिक युग में जहाँ एक ओर यंत्रीकरण से उत्पादन क्षमता की वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर मानवतावादी भावना का ह्रास भी हुआ है। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि मानव निर्मित वस्तुओं का मूल्य यंत्रीकरण द्वारा निर्मित वस्तुओं से कम ही आंका जाता है। एक वस्तु जो यंत्रीकृत है वह हजारों में बिकती है जबकि मानव निर्मित वस्तु कौड़ी के दाम में बेचने की विवशता है। इसमें मानव की उपयोगिता नष्ट होती जा रही है। मनुष्य शांति की प्राप्ति के लिए इधर–उधर भटक रहा है। उसके चेहरे की हवाइयाँ उड़ रही हैं। भविष्य की चिंता तिल–तिलकर सता रही है। सोने–चांदी को प्राप्त करने में शांति मिले यह आवश्यक नहीं है, उल्टे बेचैनी असुरक्षा की भावना का डर पल–प्रतिपल व्यथित करता रहता है। पूर्ण सिंह जी कार्य की उपयोगिता सिद्ध करते हुए कहते हैं कि वास्तविक आनंद अपने कार्य से ही प्राप्त होता है। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' का भाव भी कर्मयुक्त जीवन में चरितार्थ हो सकता है। कहा भी जाता है मानसिक संतुष्टि का मोल स्वर्गीय आनंदे से कहीं श्रेष्ठ होता है। स्वर्ग की इच्छा पूर्ण हो जाती है। मानव के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि मनुष्य का जीवन बहुमूल्य है। अनेक जन्मों का प्रतिफल मानव रूप में प्राप्त होता है। मानव की उपेक्षा करना मानवता को कलंकित करना है। मानव पूजा ही सच्ची पूजा है, सच्ची इबादत है, क्योंकि मानवता के दर्शन मस्जिद, मंदिर या गिरजेघर में नहीं होती न पोथी पढ़कर मानवता को जाना जा सकता है। लेखक की हार्दिक इच्छा है कि मैं मनुष्य के दर्शन करता रहूँ, ईश्वरीय दर्शन स्वतः ही पूर्ण हो जाएंगे, क्योंकि मानव आत्मा की सेवा करना ही प्राणी मात्र का धर्म है।

**विशेष :**

वैज्ञानिक उपलब्धियों से उत्पन्न विषय विभीषिका के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है।

लेखक ने मानव की उपयोगिता सिद्ध कर मानवतावादी भाव को अभिव्यक्त किया है।

मानव पूजा ही संसार की सबसे बड़ी पूजा है।

मनुष्य की अतृप्त भावना ही स्वर्ग की इच्छा का भाव पैदा करती है।

अध्यापक पूर्ण सिंह की मार्क्सवादी भावना व्यक्त हुई है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से ईश्वर की प्राप्ति न मंदिर में संभव है न गिरिजा में और न मस्जिद में।

सोने–चांदी की प्राप्ति से भौतिक समृद्धि तो प्राप्त की जा सकती है लेकिन मानसिक शांति की प्राप्ति मानव पूजा द्वारा ही संभव है।

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है उसके लिए स्थान विशेष का चयन अज्ञानता का द्योतक है।

मनुष्य की बदलती मानसिकता का वर्णन है।

कर्म की महत्ता प्रतिफपादित की गई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा एवं लक्षणा शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

सच्ची मित्रता ही तो सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज हो सकता है। जाति–पाति, रंग–रूप और नाम –धाम तथा बाप–दादा का नाम पूछे बिना ही अपने आपको किसी के हवाले कर देना प्रेम धर्म का तत्त्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम धाम पूछे ही पहचानता है, क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी जिससे कि वह मिलता है वहाँ सब लोग एक ही माता–पिता से पैदा हुए भाई–बहन हैं। अपने ही भाई–बहनों का नाम पूछना क्या पागलपन से कम समझा जा सकता है।

**संदर्भ** : प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध के 'मजदूरी और फकीरी' से लिया गया है।

**प्रसंग** : मित्रता की उपयोगिता तथा आदर्श प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि –

**व्याख्या** : प्रेम की परिपक्वता के लिए किसी वर्ग विशेष का होना आवश्यक नहीं है। जाति–पाति की दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं। रूप–रंग की बाध्यता भी समाप्त हो जाती है। नाम तथा बाप–दादाओं का नाम नहीं पूछा जाता। प्रेम धर्म का निर्वाह जाति–पांति, देश, नाम से परे रहकर ही किया जा सकता है। जिस समाज में प्रेम धर्म का बोलबाला होगा वह संकीर्णता से परे होगा। उसे किसी पहचान की आवश्यकता नहीं पड़ती। जाति और कुल का बंधन निश्चित भू–भाग का बोध कराता है। इस संसार में सभी एक ही ईश्वर की संतानें हैं। आपस में सभी भाई–बहन हैं। अपने ही परिवार से नाम और वंश का विवरण पूछना मूर्खता सिद्ध करती है, क्योंकि माँ–बाप का नाम उसका पूछा जाता है जिसके बारे में हम नहीं जानते। जब आपस में एक–दूसरे से घनिष्टता से जुड़े हैं तो प्रेम–धर्म के सफल निर्वाह के लिए नाम का पूछा जाना सार्थक नहीं है।

**विशेष :**

प्रेम शब्द व्यापकता का बोध कराता है, जिसकी सीमा में परिवार, समाज, देश तथा राष्ट्र समाहित हो जाता है।

कहा भी जाता है– ''प्रेम न देखे जात कुजात भूख न देखे बासी भात।''

जगतपिता परमेश्वर ने प्रेम के वशीभूत होकर ही संसार का सृजन किया।

मलिक मुहम्मद जायसी ने प्रेम को वैकुण्ठ धाम के समान माना है। यथा–

मानुष प्रेम यऐयु वैकुण्ठी

आध्यात्मिक दृष्टि से 'मनु' ही सृष्टि के पिता हैं।

परमात्मा के वर्चस्व का गुणगान किया है।

प्रसाद गुण है।

तत्सम शब्दावली तथा उर्दू का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति है।

भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है।

पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गंभीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नये प्रभात का पूर्ण ज्ञान हुआ है और हो क्यों न? इंजिनों के पहिये के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई–बहन नहीं उनकी सारी जाति पिस गई, उनके जीवन के धुरे टूट गये, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया है। साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ पांव फट रहे हैं, लहू चल रहा है, सर्दी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखंड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित 'मजदूरी और प्रेम' निबंध के पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श खंड से अवतरित है।

**प्रसंग :** मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका के दुष्परिणामों का वर्णन करता हुआ निबंधकार कहता है कि –

**व्याख्या :** समयानुसार मनुष्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। पाश्चात्य देश के लोगों के विचारों में, चिंतन में बदलाव आने लगा है। पाश्चात्य समाज अब परिवर्तन को चिंतन के धरातल पर स्वीकार करने लगा है। नये प्रभात की बेला का स्वागत करने के लिए बेचैन हैं। बुद्धिजीवी भी परिवर्तन को अवश्यंभावी मानकर उत्सुक दिखाई दे रहे हैं। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से परिचित होकर मानव निर्मित वस्तुओं को महत्त्व प्रदान करने लगे हैं। उदाहरण देकर समझाते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रातःकाल का स्वागत करने के लिए पक्षी उत्सुक रहते हैं ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य देशों को भी अब परिवर्तन की बेला का आभास होने लगा है। स्वागत की बेचैनी का कारण बताते हुए पूर्ण सिंह जी कहते हैं कि मशीनीकरण से बेरोजगारी फैली है। सामाजिक व्यवस्था भी छिन्न–भिन्न होने लगी है। मजदूरों को रोजी–रोटी की समस्या है। उद्योग–धंधे चौपट हो गये हैं। जीवन रूपी गाड़ी के धुरे टुट चुके हैं। जीविका के लिए इधर–उधर भाग रहे हैं। चंद मुट्ठीभर मनुष्य पूंजीपति होते जा रहे हैं

जबकि बड़ा वर्ग मजदूर बेरोजगारी, भूख तथा शोषण के कारण मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। शोषण में पिसते रहने से पैरों से रक्त बहने लगा है। उनके पास भूख मिटाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं है न तन ढकने को वस्त्र मिल रहे हैं। मशीनीकरण से गरीब और गरीब होता जा रहा है। अमीर और अमीर हो रहा है। मशीनीकरण के दुष्परिणाम सभी के सामने हैं।

**विशेष :**

मशीनीकरण के दुष्परिणामों का वर्णन किया है।

समाज में गरीब और अमीर का जन्म मशीनीकरण से ही होता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन से ही जीवन की क्रमबद्धता बनी रहती है।

प्रातःकालीन बेला का आभास सर्वप्रथम पक्षियों को होता है।

लेखक मशीनीकरण की अपेक्षा लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना समय की मांग समझता है।

बेरोजगारी की भीड़ में यंत्रीकरण ही उत्तरदायी है।

समाज में व्याप्त भुखमरी, शोषण, दीनता, निर्धनता तथा असमय मृत्यु का होना आदि के मूल में यंत्रीकरण ही है।

तत्सम शब्दावली के साथ अरबी, उर्दू शब्दों का प्रयोग है।

रोटी, कपड़ा और मकान के बिना स्वस्थ्य समाज की संरचना संभव नहीं है।

इंजन अंग्रेजी शब्द का प्रयोग है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

विषयानुकूल भाषा का प्रयोग है।

### 4.4.2 विशेषताएँ :

आत्मव्यंजक शैली के जन्मदाता अध्यापक पूर्ण सिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। सामाजिक विषयों पर अपनी लेखिनी चलाकर भावनाओं को व्यक्त कर मौलिक संवेदना से अवगत कराया है। मजदूरी और प्रेम निबंध सामाजिक निबंध है। इसकी विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) कृषक जीवन का चित्रण** – भारत कृषि प्रधान देश है। खेतों का वास्तविक स्वामी कृषक होता है। उसका जीवन सादगी की तस्वीर होता है। अन्न पैदा करने से उसे ब्रह्मा भी कहा जाता है, खेती उसको प्राणों से अधिक प्यारी होती है। वह वृक्षों के समान आत्मसंतोषी होता है, उसकी मौन भावना व्यक्तित्व की परिचायक होती है। वह शिक्षित नहीं होता तथा धार्मिक आडंबरों से दूर रहता है। मंदिर, मस्जिद, गिरिजा घर से कोई वास्ता नहीं रखता। रूखी–सूखी खाकर ठंडा पानी पी लेता है। बच्चे ईश्वरीय कृपा से धूल में खेलकर बड़े हा जाते हैं। मधुर वचनों द्वारा अतिथि का स्वागत करता है, पत्नी आज्ञाकारी होती है। नंगे पैर, नंगे बदन रहकर जीवन व्यतीत करता है। माली की तरह सेवा भाव होता है।

**(ख) गड़रिये की विशषताएँ** – गड़रिये का जीवन सादगी का प्रतीक है। उसे अपनी भेड़ों को चराने में आनंद आता है। उसकी भौली स्त्री पति की अनुगामिनी है। भेड़ों की सेवा करना सर्वोत्तम कार्य होता है। बीमार भेड़ की सेवा में जान की बाजी लगा देता है। पशुओं के अज्ञान में ज्ञान का सागर समाहित है।

**(ग) व्यवहारशीलता** – मजदूर की मजदूरी का कोई मूल्य नहीं होता। प्रेम भाव से ही उसको जाना जा सकता है। अपना तन और मन अर्पित कर कर्म में डूब जाता है। परिवार का पालन करना उसका सर्वोपरि धेय होता है। उसकी विधवा माँ अपने भाग्य को नहीं कोसती अपितु कर्म में रत रहती है। स्वयं को परिवार की सेवा में डुबो देती है। इसका यह तन्मय भाव, इबादत से बढ़कर है उसे नमाज, प्रार्थना की कोई आवश्यकता नहीं होती।

**(घ) कर्म पर बल** – कर्म पर बल प्रदान कर पूर्ण सिंह जी ने मानव को महिमा मंडित कर मानवता का मार्ग प्रशस्त किया है। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से अवगत कराया है। परिश्रम को महत्त्व प्रदान किया है। मनुष्य की भागीदारी को महत्वपूर्ण बनाकर कुटीर उद्योगों के प्रति लगाव व्यक्त किया है।

**(ङ) आलस्य को दूर करने पर बल** – आलस्य को दूर करने के लिए कर्म पर बल देना आवश्यक है। बिना काम, बिना बजदूरी, बिना चिंतन के जीवन व्यर्थ ही है। धर्म के ठेकेदारों को भी कर्म की प्रेरणा दी है। निकम्मापन चिंतन को थका देता है। देश की उन्नति तभी होगी जब मनुष्य आलस्य को त्यागकर क्रियाशील बनेगा। किसान, मजदूर, लुहार, मूर्तिकारों का जीवन क्रियाशीलता को दर्शाता है।

**(च) मजदूरी और फकीरी में समानता** – दोनों का स्वभाव एक समान है। मानव क्रियाशीलता विकास के लिए आवश्यक है। बिना परिश्रम के मजदूरी और फकीरी का महत्त्व घट जाता है। प्रातःकाल में जागना, उठकर कर्म में लग जाने से बुद्धि में ताजगी आती है। साधारण जीवन भी ईश्वरमय हो सकता है।

**(छ) मित्रता की कसौटी** – सच्ची मित्रता सेवा ही है। इसमें तन के साथ मन भी सम्मिलित होता है। नाम, जाति, स्थान का बोध संकीर्णता को दर्शाता है। सभी समान हैं, एक ही ईश्वर की संतान हैं। सारा विश्व वसुधैव कुटुम्बकम में है।

**(ज) मजदूरी जीवन का अभिन्न अंग** – मजदूरी जीवन का अभिन्न अंग रहा है। जोन ऑफ आर्क की फकीरी, टॉल्सटॉय का त्याग व जूते गांठना, उमर खैयाम का तम्बे सिलना, खलीफा उमर का महलों में चटाई बुनना, कबीर रैदास का शूद्र होना, नानक और भगवान श्री कृष्ण का पशुओं को चराना इसका प्रमाण है।

**(झ) पश्चिमी सभ्यता में बदलाव** – मशीनीकरण से उत्पन्न विभिषिका से मनुष्य अवगत हो गया है। वह मनुष्यों की ओर मुंह उठाये देख रहे हैं। यंत्रीकरण से मानव जाति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। बेकारी, दरिद्रता, दिखाई देने लगी है। मशीनें काल बनकर मानव जाति पर टूट पड़ी हैं।

**(ञ) कुटीर उद्योगों की महत्ता** – मशीनीकरण से ग्रस्त मनुष्य कुटीर उद्योगों की ओर भागने लगे हैं। यंत्रीकरण से धन एकत्रित किया जा सकता है। लेकिन स्नेह, प्रेम भावना नहीं। व्यवहारशीलता से ही मानव जाति का कल्याण संभव है। मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन हो गया है। विचार मंथन से उसका भ्रम टूट गया है। लेखक का मानना है कि जब सभी अपने–अपने दायित्व का पालन करेंगे तभी मानव व्यवहार में अपनापन, त्याग की भावना पैदा होगी।

### 4.4.3 भाषा शैली :

पूर्ण सिंह भाषा के चितेरे हैं। उनकी भाषा में मनुष्य को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति है। भाषा में सहजता, चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता का गुण विद्यमान है। भाषा में वर्णित सौंदर्य निम्नवत् है –

**(क) तत्सम शब्दों की प्रधानता** – आहुति, वृक्ष, दर्शनार्थ, प्रार्थना, प्रातः दृश्य, धर्म, निष्कपट।

**(ख) उपमा का सौंदर्य** – चिनगारियों की डालियों सी, आहुति सा, विष्णु के समान, भरत मिलाप का समां सा।

**(ग) अंग्रेजी शब्द** – इंजन, टॉल्सटॉय, रॉफेल।

**(घ) उर्दू, अरबी, फारसी शब्द** – धोखा, फकीर, हमजोली, हमराज, मकां, इशारे, अश्क, खुदा, मजदूर, दिल्लगी, जिल्दसाज, समां, नमाज, सितम, निसार, मयस्सर।

**(ङ) चित्रात्मकता** – प्रातःकाल उठना, बैलों को नमस्कार करना, खेत जोतना, बच्चों का मिट्टी में खेलना, आसमान की ओर देखना, आदि प्रसंगों में चित्रात्मकता है।

पूर्ण सिंह जी ने विषयों की प्रस्तुति के लिए भावात्मक, चित्रात्मक, वर्णनात्मक, लाक्षणिक शैलियों का प्रयोग किया है। मजदूरी और प्रेम निबंध में चित्रात्मक भावात्मक व वर्णनात्मक शैली की प्रधानता मिमलती है। निबंध में वर्णित शैलियों के उदाहरण निम्नवत् हैं–

**(क) चित्रात्मक शैली** – नंगे सिर, नंगे पांव, एक टोपी सिर पर, एक लंगोटी कमर में, एक काली कमली कंधे पर, एक लंबी लाठी हाथ में लिए।

**(ख) भावात्मक शैली** – मेरी आत्मा का वस्त्र है इसको पहनने में ही मेरी तीर्थ यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख–दुःख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन–रूपिणी गंगा की बाढ़ चली आ रही है।

**(ग) वर्णनात्मक शैली** – जॉन ऑफ आर्क की फकीरी, भेड़ों चराना, ऑल्सटॉय का त्याग और जूते गांठना, उमर खैयाम का तंबू सीते फिरना, खलीफा उमर का रंगमहल में चटाई बुनना, ब्रह्मज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान श्री कृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हांकना सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण है।

### 4.4.4 निष्कर्ष

मजदूरी और प्रेम अध्यापक पूर्ण सिंह द्वारा रचित निबंध है। इसमें श्रम की महत्ता व मानवतावाद की प्रतिष्ठा कर सादा जीवन उच्चविचार को चरितार्थ कर मशीनीकरण से उत्पन्न विभीषिका से अवगत कराया गया है। यह निबंध पूर्ण सिंह जी की बहुज्ञता तथा उदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

हल चलाने वाले किान कहलाते हैं, किसान का जीवन सादगी का परिचायक होता है। परिश्रम उसका साथी है। आलस्य उससे कोसों दूर भागता है। वह अन्न पैदा कर ब्रह्मा के समान होता है। चहुं ओर फैली वनस्पति ही उसका जीवन है। वृक्षों के समान मौन धारण कर जीवन यापन करता है। धार्मिक कृत्यों से दूर रहता है। बैलों की पूजा करना नहीं भूलता। गांव की मिट्टी में उसकी आत्मा बसती है। अतिथि सत्कार मृदुल व्यवहार, स्नेहमयी वाणी, शीतल जल तथा अन्न से करता है। धोखा देना नहीं सीखा। पत्नी आदर्श गुणों से पूर्ण है। दया तथा प्रेम का उपासक है। किसान प्रकृति के जवान साधु नजर आते हैं।

किसान के समान गड़रिया भी सादगी की मूर्ति होता है। भेड़ों को चराना, ऊन काटना उनकी दिनचर्या है। बर्फीले स्थान पर भगवान विष्णु के समान लगता है। भेड़ों की सेवा व पालन तन्मयता से करता है। भेड़ के बीमार होने पर रातभर बैठकर सेवा करता है। कवि का मन भी गड़रिये के जीवन के प्रति अनुरक्त है। अपने ज्ञान सागर को भूलकर गड़रिया वन जाना चाहता है। इनका जीवन अनुभवों की खान होता है।

मजदूर की मजदूरी उसका परिश्रम ही होता है। पैसों के साथ अगर मधुर वाणी का मिश्रण हो जाए तो चार–चाँद लग जाते हैं। मनुष्य की, मजदूरी का कोई मोल नहीं है। प्रेमभाव ही उसका मूल्य है। मजदूर के परिवार के दर्शन करना तीर्थ यात्रा के समान है, जिसके सामने प्रार्थना, संध्या और नमाज भी व्यर्थ है।

हाथ से बनी वस्तुओं में आत्मीयता का बोध होता है। मशीनों से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, लेकिन

आत्मा के दर्शन करना संभव नहीं। मनुष्य के हाथों से किये गये कार्यों में हृदय का प्रेम, मन की पवित्रता मिल जाती है। होटल के खाद्य पदार्थ नीरस होते हैं, जबकि गृहिणी के हाथों से बने भोजन में खुशबू व परिश्रम के दर्शन होते हैं। दिनभर की दौड़धूप व परिश्रम करके पवित्र मन से निमग्न होकर जो भोजन तैयार होता है वह यांग का ही द्योतक है।

परिश्रम करना मनुष्य का कर्म है। भौतिक सुख सुविधाओं में भी वह सुख नहीं मिलता जो सुख अपने द्वारा किये गए कार्यों में मिलता है। मानव पूजा ही सर्वोपरि है। मशीनों से मनुष्य बेकार हो रहे हैं। मनुष्य की अनमोल आत्मा में ही सच्चे ईश्वर के दर्शन होते हैं। प्रगति का मार्ग आलस्य से कुंठित हो जाता है। उन्नति के मूल में परिश्रम ही खाद का कार्य करता है। निष्क्रियता से चिंतन शक्ति थक जाती है। चाहे वह कवि ही क्यों न हो। नये साहित्य का जन्म मजदूरों से ही होता है। कार्य कोई भी हो सबमें तन्मयता की गंध आवश्यक है। मजदूर की मजदूरी ही सच्ची उपासना है तभी सच्चे कवियों का जन्म होगा, औलियों का अवतार होगा। ?

फकीर और मजदूर के स्वभाव समान होते हैं। बिना परिश्रम के मजदूरी का कोई मूल्य नहीं होता, ठीक उसी प्रकार फकीरी का सम्मान भी गिर जाता है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है। जब तक संसार क्षेत्र में मनुष्य कर्मरत रहेगा उसका आदर्श भी जीवित रहेगा। चाहे वह मौलवी हो, पंडित हो, साधु हो, संन्यासी हो सभी को मजदूरी करनी आवश्यक है। इसके बिना बुद्धि में पैनापन नहीं आ सकता। बाह्य आडंबरों की कोई आवश्यकता नहीं है। साधारण जीवन में ही ईश्वर दर्शन संभव है। मजदूरी के बदले मिलने वाला स्नेह ही सच्ची मित्रता है। जाति–पाति की दीवारों को तोड़कर स्वयं को सेवा में लगा देना ही प्रेम धर्म का पूरक है। सभी एक ईश्वर की संतानें हैं। नाम पूछकर संकीर्णता प्रदर्शित होती है। एक परिवार के दर्शन संसार में होते हैं। आपसी मित्रता होगी, सभी समान होंगे, तो स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आयेगा। मजदूरी करना जीवन का ध्ययेे है। टॉल्सटॉय, खैय्याम, खलीफा उमर, कबीर, रैदास, गुरुनानक, श्रीकृष्ण के जीवन वृतांत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कवि का मानना है कि मजदूरी करने से मन पवित्र होता है तथा सच्चे ऐश्वर्य के दर्शन होते हैं। जब तक धन एवं ऐश्वर्य के स्थान पर मजदूरी को महत्त्व नहीं दिया जायेगा तब तक श्रेष्ठ भारत का निर्माण असंभव है। कविता, साधु और फकीरी ये तीनों दिव्यता से युक्त हैं। इन्हीं से मानव जाति का कल्याण संभव है। जहाँ समरसता का अभाव है वहाँ इनको नहीं देखा जा सकता। बिना शुद्ध पूजा के मूर्ति पूजा व्यर्थ ही है। हम जातिगत वैमनस्य के फलस्वरूप ही जातिगत दरिद्रता को भोग रहे हैं।

पाश्चात्य देशों ने भी अब अपने मानदंडों में परिवर्तन कर लिया है। कल कारखानों की अपेक्षा मानव पूजा होने लगी है। मशीनीकरण के दुष्परिणामों से अवगत होकर अब चेतना संपन्न हो गए हैं। एक ओर गरीबी का साम्राज्य है तो दूसरी ओर मजदूरों के श्रम से बनी ऊंची अट्टालिकाएँ इतरा रही हैं। इंजनों के दुष्परिणाम भुखमरी, बेकारी के रूप में सामने आए हैं। मनुष्य को मनुष्य ही सुख दे सकता है। धन की पूजा करना नास्तिकता का सूचक है। मनुष्य जाति को सुखी बनाना ही सच्ची पूजा, सच्ची इबादत है। चैतन्य पूजा से ही मनुष्य का कल्याण संभव है। समाज का पल्लवन करने वाली धूद की धारा मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कपट मन तथा मित्रता पूर्ण नेत्रों से ही प्रस्फुटित होगी। तभी चहुंओर हरियाली के दर्शन होंगे। आज से ही यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हम अब हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठेंगे। नियत कर्म को करने में जुट जायेंगे, घर–घर में प्रेम का द्वीप प्रज्वलित होगा, प्रत्येक घर में अनाज के ढेर लगे होंगे और मनुष्य मजदूरी करके प्रेमामृत का मान कर प्रसन्नचित्त होंगे।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

17. लेखक ने किसान की तुलना व समानता किससे की है?

18. किसकी दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं?

19. समानता के भाव किस में मिलते हैं?

20. भुखमरी के लिए उत्तरदायी कौन है?

21. भेड़ें कैसी ऊन वाली थीं?

22. मनुष्य के हाथ से बने कार्यों में कैसी गंध आती है?

23. श्रम की महत्ता किस निबंध का उद्देश्य था?

24. हल चलाने वालों को क्या कहा जाता है?

## 4.5 कविता क्या है? (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

शुक्ल युग के प्रवर्त्तक, चिंतनशील निबंधकार, भावात्मक तथा सैद्धांतिक विचारक, विविध विषयों के मर्मज्ञ, अनुवादक, लोक मंगल भावना के समर्थक, रूढ़ियों, अनैतिकताओं के विरोधी, समन्वयवादी भावना को पल्लवित करने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की साहित्यिक उपलब्धियों को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। चिंतामणि उनके निबंध का श्रेष्ठ संकलन है। कविता क्या है? निबंध में शुक्ल के चिंतन पक्ष का चित्रण मिलता है। उन्होंने सैद्धांतिक एवं मनोवैज्ञानिक निबंधों का सृजन किया।

कविता क्या है? निबंध शुक्ल का काव्यशास्त्रीय निबंध है। इसमें कविता की परिभाषा, कवि का संसार, मनोरंजन, भाषा सौंदर्य का चित्रण किया गया है। हिंदी गद्य को चिंतन तथा वैचारिकता जैसे गुणों से पूर्ण किया है। मार्मिक प्रसंगों का चित्रण करना शुक्ल जी की प्राथमिकता रही है। मानव की व्यवहारिक प्रवृत्तियों का साहित्यिक रूप में विवेचन करना उनका मुख्य उद्देश्य रहा है।

### 4.5.1 व्याख्या खंड :

जिस प्रकार हृदय की मुक्वावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्म योज्ञ और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रवर्त्तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' से लिया गया है।

**प्रसंग** : कविता को परिभाषित करते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

**व्याख्या :** शुक्ल जी का मानना है कि सांसारिक बंधनों का मोहजाल अपने शिकंजे में मानव को जकड़ लेता है। उसे मानसिक शांति नहीं मिल पाती। जब व्यक्ति की आत्मा इन बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छंदता को प्राप्त होती है तब उसकी स्थिति को ज्ञान दशा कहकर संबोधित किया जाता है। यह ज्ञान की दशा ही वास्तविकता से अवगत कराती है। जब मनुष्य का हृदय निजी स्वार्थ को त्यागकर सुख–दुख, लाभ हानि, जय–पराजय, उत्थान–पतन के आकर्षण से स्वतंत्र हो जाता है तो उसके हृदय की अवस्था को रसदशा नाम से अभिहित किया जाता है। हृदय को रसात्मकता के धरातल पर लाने के लिए अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है जिसे नियमों की कड़ी भी कहा जाता है। जिस व्यक्ति की वाणी इन बनाए गए नियमों से संपृक्त होकर मुखरित होती है तो वह कविता कहलाई जाती है। कविता का यह प्रयास जिसे शब्द–साधना कहते हैं कर्म और ज्ञान के प्रांगण में, भावों के उद्वंग से कविता का अस्तित्व सामने लाता है जिसे भावयोग कहा जाता है। शुक्ल जी कवि कर्म की तुलना क्रियाशील व्यक्ति से करते हुए कहते हैं जिस प्रकार क्रियाशील व्यक्ति निस्पृह होकर अपने कर्म में डूब जाता है। ज्ञानी ज्ञान साधना द्वारा परम तत्व को प्राप्त करता है। ठीक उसी प्रकार कवि भी भावविभोर होकर कविता को जन्म देता है।

**विशेष :**

काव्य की परिभाषा का उल्लेख है।

यहाँ शुक्ल जी की भारतीय काव्यशास्त्र के ज्ञान की छटा दृष्टव्य है।

आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा से मुक्ति मृत्यु के बाद ही संभव है।

काव्य का जन्म हृदय की सहृदयता द्वारा ही संभव है।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद भी काव्य की परिभाषा के लिए आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति का होना आवश्यक मानते हैं।

साधना शब्द आध्यात्मिक पक्ष को मुखरित करता है।

कविता का जन्म शब्दों के अस्तित्व पर आश्रित है।

लक्षणा शब्द शक्ति है।

पारिभाषिक शब्दों की छटा दृष्टव्य है।

भाषा में पैनापन व कसावट का गुण समाहित है।

कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव–भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। कवि अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण निबंध धारा के प्रबुद्ध आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' से लिया गया है।

**प्रसंग** : इन पंक्तियों में शुक्ल जी ने कविता के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है –

**व्याख्या :** कविता एक ऐसा माध्यम है जो मानव के हृदय को रसात्मकता में पहुँचा देती है। हृदय की तन्मयता से मानव सांसारिक बंधनों के साथ स्वयं के राग–द्वेष से भी दूर हो जाता है। उसकी अपनी वैयक्तिकता सार्वभौमिकता में बदल जाती है। लोक हृदय के साथ उसका रागात्मक संबंध हो जाता है। उसे सांसारिक मोह माया का जाल नहीं फंसा पाता। वह सांसारिक गतिविधियों, संघर्षों, जय–पराजय, जीवन के गूढ़तम रहस्यों के प्रति अनासक्त भाव प्रदर्शित करता है। इस स्थिति में मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थ भूलकर जन सामान्य में डूब जाता है। उसका हृदय इतना संवेदना से युक्त होता है कि वह दूसरों के भावों को समझता है। आत्मसात भी करता है। इसी पुनरावृत्ति में उसके हृदय में मनोभावों की संस्कारिता होती है। सहृदय की विश्व के साथ जुड़ी रागात्मक अनुभूति के फलस्वरूप भावात्मक संबंध स्थापित होते हैं जिससे हमारे संबंधों में प्रगाढ़ता आती है।

**विशेष :**

कविता का जन्म मनःस्थिति के फलस्वरूप होता है।

यह नायक के साधारणीकरा भाव का वर्णन है।

स्हृदय व्यक्तित्व वैयक्तिकता की अपेक्षा सार्वभौमिकता से युक्त होता है।

मनुष्य का रागात्मक व्यवहार ही समाज तथा विश्व को भावात्मक रूप से जोड़ देता है।

लोक का प्रभाव अमिट तथा स्थायी होता है।

कविता द्वारा मनोविकारों का परिष्कार होता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा व लक्षणा शब्द शक्ति है।

रागात्मक अनुभूति के फलस्वरूप ही वाल्मीकि ने रामायण का सृजन किया।

काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है।

सभ्यता की वृद्धि के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मनुष्य के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गए त्यों–त्यों उनके मूल रूप बहुत कुछ आच्छन्न होते गए। भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यों के अतिरिक्त और–और लक्ष्यों की उपासना होती गई, वासना जन्म मूल व्यापारों के सिवा बुद्धि द्वारा निश्चित व्यापारों का विधान बढ़ता गया। इस प्रकार बहुत से ऐसे व्यापारों से मनुष्य घिरता गया जिनके साथ उसके भावों का सीधा लगाव नहीं।

**संदर्भ :** यह गद्यावतरण प्राख्यात निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग** : इन पंक्तियों में शुक्ल जी ने मानवीय हृदय परिवर्तन का वर्णन किया है।

**व्याख्या :** शुक्ल जी का मानना है कि मानव विकास के साथ उसके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन स्वाभाविक होता है। उसका कार्य–व्यवहार भी विस्तीर्ण होता जाता है। उसके संबंधों का दायरा बढ़ता जाता है। कार्य की सिद्धि में उतने ही व्यवधान आने शुरू हो जाते हैं। उसका मन निश्चित लक्ष्य से भटक जाता है। भावनाओं में बदलाव आ जाता है। प्रारंभिक काल में उसका लक्ष्य रोटी की व्यवस्था करना, तन ढकने के लिए कपड़ा तथा प्राकृतिक मार से बचने एवं जंगली जानवरों से रक्षा के लिए मकान की आवश्यकता थी। अ बवह भौतिकता की चकाचौंध से चमत्कृत है। सांसारिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उसके संबंधों में मन, बुद्धि के साथ वासना का भी समावेश होने लगा है। मानव ने अनेक व्यापारों तथ भावी योजनाओं का प्रयो करके देखा है जिससे उसके क्रिया–कलापों की शैली भी प्रभावित हुई है। मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर आ गया है।

**विशेष** :

सभ्यता के विकास के साथ मानव के क्रियाकलापों में भी परिवर्तन आने लगा है।

वैज्ञानिक उपलब्धि तथा आधुनिक घटनाचक्र से मनुष्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

ज्यों–ज्यों मानव बुद्धि सम्पन्न हुआ है त्यों–त्यों मानसिक आघात भी सहने पड़े हैं।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

विषम की गूढ़ता शुक्ल की विद्वता का सूचक है।

पुनरुक्ति अलंकार है।

विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

अविधा शब्द शक्ति व प्रसाद गुण का प्रयोग है।

इसकी प्रच्छन्मता का उद्‌घाटन कवि कर्म का एक मुख्य अंग है। ज्यों–ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी, त्यों–त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा संबंध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों–ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए–नए आवरण चढ़ते जाएंगे, त्यों–त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जाएगा।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रसिद्ध आलोचक निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** शुक्ल जी सभ्यता के आचरण और कवि कर्म की जटिलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

**व्याख्या :** परिवर्तन प्रकृति का नियम है। सभ्यता भी परिवर्तन के साथ बदलती है। मनुष्य के आचार–विचार, रीति–रिवाज़, मूल प्रवृत्तियाँ तथा मनोभाव भी बदल जाते हैं। कवि को चाहिए कि वह सभ्यता के इस परिवर्तन को अलग कर मानव मूल्यों, मूल मर्म की पहचान करे। कवि का यह क्षेत्र जटिलताओं से भरा हुआ है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों तक पहुँचने के लिए उसे जीवन के स्वरूप व व्यवहरों को सामने लाना होगा, जिससे मानवता पल्लवित होती हो। विकासशील सभ्यता की गति में छिपी भावनात्मक अभिव्यक्ति खोजनी होगी। कवि के भावों को मनुष्य से तादात्म्य कराने के लिए इन कुप्रथाओं, कुप्रवृत्तियों के आवरण को दूर करना होगा। कविता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि कविता के बिना सामान्य दर्शन के लिए उसे कृत्रिमता से दो–चार होना पड़ेगा। उसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कविता को आत्मसात् करना होगा। हम जितना सभ्य होते जाएंगे उतनी ही हमारी वृत्तियाँ नए आवरणों से लिप्त होती जाएंगी। इन परिस्थितियों से रक्षा के लिए कविता ही एक ऐसा माध्यम है जो कवि के साथ सामान्य मानव को भी अपने परिवेश के साथ सजग बनाएगी तथा दिशाबोध का भाव जाग्रत करेगी।

**विशेष :**

सभ्यता एवं मानव वृत्तियों को अन्योन्याश्रित संबंध है।

काव्य में यह शक्ति है जो रोते को हंसा देता है। एकांत आत्म संबल प्रदान करता है।

कविता का जन्म परिस्थितियों पर निर्भर है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

शुक्ल के अनुसार कविता साधन है।

तुलसी के लिए कविता आत्म संतुष्टि का कारण बनी।

पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

अनंत रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है। – कहीं मधुर, सुसज्जित या सुंदर रूप में; कहीं रूखे बेडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्र कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है, क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख भोग नहीं, बल्कि चिर साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है। जो केवल कूंजित निकुंज और शीतल सुख, स्पर्श, समीर इत्यादि की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोग लिप्सु हैं।

**संदर्भ :** यह गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबां 'कविता क्या है?' के 'कविता और सृष्टिप्रसार' खंड से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों द्वारा शुक्ल जी ने कवि वर्ग का उल्लेख करते हुए कहा है –

**व्याख्या :** मनुष्य प्रकृति का संबंध जन्म जन्मांतर का रहा है। सांसारिक घटनाचक्र से त्रस्त मानव आत्मिक शांति प्राप्त करने के लिए प्रकृति की गोद में जाकर विश्राम करता है। यह प्रकृति हमें मनःस्थिति के अनुरूप नज़र आती है। प्रकृति का कोमल रूप जहाँ मन को आकृष्ट कर लेता है वहीं विकराल रूप जान बचाने को व्यथित भी करता है। शुक्ल जी का कहना है कि सच्चा कवि प्रकृति के इन दोनों रूपों को स्वीकार करता है। इनके द्वारा विषयों पर अपनी राय से अवगत कराता है। प्रकृति से अटूट संबंध के कारण ही रागात्मक भाव भी व्यक्त करता है। जो कवि प्रकृति चित्रण द्वारा फूलों की गंध, लोलुप भ्रमरों, मधुर कंठी कोयल तथा शीतल पवन के स्पर्श का चित्रण करते हैं वे विषय वासनाओं तथा भोगवादी प्रवृत्ति के समर्थक होते हैं। वे सहृदय कवि कहलाने के हकदार नहीं हैं।

**विशेष :**

प्रकृति ने अनेक रचनाओं के सृजन हेतु पृष्ठभूमि प्रदान की है।

प्रकृति मनुष्य के सुख दुःख का परिचायक है।

कवि को अपने कर्म के प्रति सचेत किया है।

प्रकृति सुखद रूप में मनुष्य को भावविभोर करती है वहीं विकराल रूप में विचार मंथन के लिए विवश भी करती है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

छायावादी कवियों के लिए प्रकृति ने व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान की है।

जो केवल अपने विलास या शरी–सुख की सामग्री ही प्रकृति में ढूंढा करते हैं उनमें उस रागात्मक तत्त्व की कमी है जो व्यक्त सत्ता मात्र के साथ एकता की अनुभूति में लीन करके हृदय की व्यापकता का आभास देता है। संपूर्ण सत्ताएँ एक ही परम सत्ता और संपूर्ण भाव एक ही परम भाव के अंतर्भूत हैं। अतः बुद्धि की क्रिया से हमारा ज्ञान जिस अद्वैत भूमि पर पहुंचता है उसी भूमि तक हमारा भावात्मक हृदय भी इस सत्य–रस के प्रभाव से पहुंचता है। इस प्रकार अंत में जाकर दोनों पक्षों की वृत्तियों का समन्वय हो जाता है। इस समन्वय के बिना मनुष्य की साधना पूरी नहीं हो सकती।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रहरी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के कविता और सृष्टि–प्रसार खंड से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में कविता के लक्ष्य का प्रतिपादन करते हुए शुक्ल जी ने कहा है कि ईश्वर प्राप्ति एवं अंतःवृत्तियों का समन्वय कराना है।

**व्याख्या :** शुक्ल जी का कहना है कि प्रकृति मनुष्य के सामने सुख और दुःख दोनों को साकार रूप में लाती है। कवि का कार्य केवल सुखद स्थिति का अंकन करना ही नहीं होता अपितु दुःख की बेला को उसी रूप में स्वीकार करना है। जो केवल सुख के आकांक्षी हैं उनमें भावनात्मक दृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है। प्रकृति द्वारा कवि संपूर्ण सृष्टि के साथ भावात्मक रूप से जुड़ जाता है जिससे समस्त संसार में परमतत्व का अनुभव होने लगता है। इससे कवि के व्यापक दृष्टिकोण का पता चलता है। संसार में भिन्न दिखाई देने वाली वस्तुओं से भी पारस्परिक संबंध पाया जाता है। इस विभिन्नता की नीड़ में एकता के चिन्ह् निहित होते हैं। विविध भाव भंगिमाओं के मूल में एक ही भाव दृष्टव्य होता है जिसे ज्ञान चक्षुओं से जाना जा सकता है। ईश्वरीय सत्य को पाया जा सकता है। हम कुत्सित विचारधारा का परित्याग कर वैयक्तिक चेतना के बल पर परम सत्ता तक पहुंच जाते हैं। भावना और बुद्धि के दो मार्ग भी आगे चलकर एकाकार हो जाते हैं। इनके पारस्परिक अलगाव के फलस्वरूप ज्ञान एवं काव्य सृजन में एकरूपता नहीं मिलती।

**विशेष :**

शुक्ल की समन्वयवादी भावना का चित्रण है।

पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग है।

बुद्धि, हृदय के पारस्परिक सामंजस्य से ही एकरूपता आती है।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का भी यही मानना था– 'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा पूरी क्यों हो मन की, एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडंबना है जीवन की।'

परमसत्ता की व्यापकता को स्वीकार किया है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली प्रयोग में लाई गई है।

परिनिष्ठित एवं रिमार्जित भाषा प्रयुक्त हुई है।

समन्वय के पश्चात् ही ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है।

कविता का अंतिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पद्यों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है। इतने गंभीर उद्देश्य के स्थान पर केवल मनोरंजन का हल्का उद्देश्य सामने रखकर जो कविता का पठन–पाठन या विचार करते हैं, वे रास्ते में ही रह जाने वाले पथिक के समान हैं। कविता पढ़ते समय मनोरंजन आवश्यक होता है। पर उसके उपरांत कुछ और भी होता है और वही सब कुछ है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत अवतरण निबंधकार आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध के मनोरंजन खंड से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में काव्य प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

**व्याख्या :** कविता का लक्ष्य संसार के मार्मिक दृश्यों का वर्णन कर मानवीय संबंध स्थापित करना है। कविता के

पठन–पाठन से हृदय का साधारणीकरण हो जाता है। संसार के मार्मिक प्रसंगों (भूखे नंगे बच्चों) को देखकर कविता इनके साथ रागात्मक संबंध स्थापित कर लेती है। यही कविता का मूल लक्ष्य है। जो काव्य सृजन का लक्ष्य मनोरंजन प्राप्ति ही मानते हैं वे कविता कामिनी से अनभिज्ञ ही रहते हैं। वे शीघ्र ही थकान मानकर यात्रा स्थगित करने वाले पथिक के समान होते हैं। जिस प्रकार रास्ता कभी निश्चित मंजिल का घोतक नहीं होता वह तो लक्ष्य प्राप्ति का द्वार होता है। मनोरंजन से कविता के उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती। हृदय की आत्मीय भावना के साथ संबंध स्थापित करना ही मूल लक्ष्य होता है। कविता द्वारा हमारी मनोवृत्तिसष्सें का शुद्धिकरण होता है यही अंतिम एवं मूल लक्ष्य भी माना जाता है।

**विशेष :**

कविता के प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है।

मार्मिक वर्णन ही कविता को जीवंतता प्रदान करते हैं।

कविता का लक्ष्य हृदय का परिष्कार करना है।

शुक्ल जी का वैचारिक चिंतन व्यक्त है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है।

लक्षणा शब्द शक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

भाषा में कसावट का गुण है।

कविता केवल वस्तुओं के ही रंग रूप के सौंदर्य की छटा नहीं दिखाती, प्रयुक्त कर्म और मनोवृत्ति के सौंदर्य के भी अत्यंत मार्मिक दृश्य सामने रखती है। वह जिस प्रकार विकसित कमल, रमणी के मुख–मंडल आदि का सौंदर्य मन में लाती है उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जमाती है। जिस प्रकार वह शव को नोचते हुए कुत्तों और श्रृंगालों के वीभत्स व्यापार की झलक दिखाती है उसी प्रकार क्रूरों की हिंसा वृत्ति और दुष्टों की ईर्ष्या आदि की कुरूपता से भी क्षुब्ध करती है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के सौंदर्य खंड से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं–

**व्याख्या :** कविता को पढ़कर पाठक केवल वस्तु या दृश्य के ही दर्शन नहीं करता अपितु निहित कर्म और मनोवृत्ति के दर्शन भी कर लेता है। कविता समभाव दृष्टि से जगत के शोभनीय पक्षों का चित्रण करती है। जिस प्रकार कविता में हमें एक ओर कमल तथा रमणी के सौंदर्य का पता चलता है ठीक उसी प्रकार वह जीवन के उस पक्ष को भी सामने लाती है, जहाँ हमें उदारता, वीरता, त्याग, दया प्रेम का आदर्श रूप तथा मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मुखरित होता है। आगे शुक्ल जी कहते हैं कि कविता जीवन के शुभ पक्ष के साथ–साथ कुरूप पक्ष को भी सामने लाती है। शव को फाड़ते कुत्ते और श्रृगाल दिखाई देते हैं तथा क्रूरता की झलक, हिंसात्मक स्वरूप तथा दुष्टों की कुरूपता भी मुखरित होती है।

**विशेष** :

कविता के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है।

कविता द्वारा भावात्क सौंदर्य का पता चलता है।

कविता में युगीन परिदृश्य के साथ कवि की वैयक्तिकता भी मुखरित होती है।

मानव मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की गई है।

भावानुकूल अभिव्यक्ति मुखरित होती है।

प्रसाद गुण है।

वीभत्स रस का चित्रण किया गया है।

कुरूपता युगीन यथार्थ का बिंब होती है।

मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य–असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। बात यह है कि मुनष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल मंडल बांधता चला आ रहा है जिसके भीतर बंधा–बंधा वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का संबंध भूला–सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अंतःप्रकृति में मनुष्यता को समय–समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य जाति के साथ चली आ रही है और चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।

**संदर्भ** : प्रस्तुत गद्यावतरण शुक्ल युग के प्रवर्त्तक, आलोचक, निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है?' के कविता की आवश्यकता खंड से अवतरित है।

**प्रसंग** : इन पंक्तियों में मानव जीवन में कविता की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

**व्याख्या** : जिस प्रकार जिंदा रहने के लिए भोजन पानी की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार मन द्वारा प्रसादन के लिए कविता की उपयोगिता प्रतिपादित की जाती है अर्थात् मानव जीवन कविता के बिना अपूर्ण ही है। इसीलिए संसार में जितनी भी जातियाँ हैं उनके पास अपनी–अपनी कविता है। दर्शन, विज्ञान, इतिहास के बिना जीवन में क्रमबद्धता बनी रहती है लेकिन कविता के बिना रिक्तता ही बनी रहती है। विज्ञान और दर्शन का संबंध चिंतन से है। कविता का संबंध मनुष्य की स्वाभाविक व जन्मजात प्रवृत्तियों से है। प्रगति की दौड़ में मानव ने अपने चारों ओर व्यापारों का आवरण ओढ़ लिया है जिससे जगत से उसका संबंध टूटने सा लगता है जिससे कभी भी मनुष्यता के नष्ट होने का अंदेशा बना रहता है। मनुष्यता का बोध जगत के साथ संबंधों की प्रक्रिया से ही जाना जा सकता है। इस कार्य में कविता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कविता मनुष्य को प्रकृति के साहचर्य का आभास कराती रहती है। मानवीय गुणों को पल्लवित करने के लिए कविता का संबंध मानव जाति से सुदृढ़ रूप में आबद्ध होता है। कविता और मानव का यह अन्योन्याश्रित संबंध चलता ही रहेगा। जब तक मानव में पाशविक प्रवृत्तियों का जन्म नहीं होगा तब तक कविता अपनी उपयोगिता से लाभान्वित करती रहेगी।

**विशेष** :

कविता और मानव का संबंध प्रदर्शित है।

कविता की उपयोगिता का वर्णन है।

ज्ञान, विज्ञान तथा दर्शन में बुद्धि की अनिवार्यता है जबकि कविता के लिए भावात्क अभिव्यक्ति आवश्यक है।

शुक्ल जी का काव्यशास्त्रीय विवेचन है।

सहृदयशील व्यक्तित्व से ही मानवता पल्लवित होती है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग है, जैसे – जरूरत आदि।

कविता द्वारा मानसिक शुद्धिकरण भी होता है जिसे विवेचन सिद्धांत कहते हैं।

मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है।

कविता का स्वरूप हमें सभ्य तथा असभ्य जातियों में भी लोक गीतों के रूप में देखने को मिलता है।

संस्कृतनिष्ठ भाषा प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

### 4.5.2 विशेषताएँ :

शुक्ल युग के प्रवर्त्तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है?' निबंध सैद्धांतिक कोटि का है। जो कविता की परिभाषा, बदलते मानदंड, काव्य सृजन की पृष्ठभूमि, मार्मिक तथ्य, व्यवहार, कल्पना, भाषा, मनोरंजन, आवश्यकता, उपादेयता शीर्षकों में विभक्त है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) परिभाषा** – भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम कविता को माना जाता है। मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति कविता को व्यंजित करती है। हृदय की मुक्ति, साधन हेतु जो वाणी शब्द विधान का निर्माण करती है कविता कहलाती है। कविता द्वारा व्यक्ति लोक भूमि पर पहुंच जाता है जहाँ मार्मिक तथ्यों की व्यंजना दिखाई देती है।

**(ख) सभ्यता के आवरण और कविता** – सभ्यता की वृद्धि के साथ कविता के स्वरूप में भी परिवर्तन होने लगता है। बुद्धि का व्यापार बढ़ने लगा, मान, मर्यादा, अधिकार की मांग बढ़ने लगी। पारस्परिक छल कपट का व्यवहार होने लगा। प्रतिकार का स्वरूप सामने आने लगा। कवियों ने इन्हें कविता में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। सभ्यता के बदलने से कवियों का दायित्व भी बढ़ गया।

**(ग) कविता व सृष्टि प्रसार** – भावात्मकता का प्रसाद बढ़ने लगा। सहृदयशील व्यक्ति में दया ममता के साथ शौर्य, पराक्रम के भाव भी पैदा हो गये। आंतरिक व बाह्य दो क्षेत्र सामने आए। प्रबंध व मुक्तक साहित्य के दो रूप में अभिव्यक्ति के दर्शन हुए। वाल्मीकि रामायण में लोक चरित्र की प्रधानता थी। बाह्य रूप में प्रकृति की छटा का वर्णन किया जाने लगा। कुमार संभव इसका प्रमाण है। भवभूति का 'उत्तर रामचरित्र' नाटक आंतरिक पक्ष पर टिका है। कालिदास का मेघदूत बाह्य पक्ष का प्रतीक है।

**(घ) मार्मिकता** – मानव व्यक्तित्त्व में सुख–दुःख लाभ हानि, हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, तोष–क्षोम, कृपा–क्रोध आदि भावों की व्यंजना होती है। सुंदर कथन जिन्हें उक्ति तो कहा जाता है भी देखने को मिलती है। वर्षा की झड़ी में, हर्ष उल्लास के साथ वेदना, ग्रीष्म ऋतु में शिथिलता तथा शरद ऋतु कंपन को व्यक्त करती है। पर भावुक कवि इनमें अपनी भावनाओं की अन्विति देता है। जड़ चेतना में पाए जाने वाले रूप व्यापार भी परिस्थितियों का वर्णन माना जाता है। सूक्ष्म चित्रण में गूढ़ व्यंजना भी व्यक्त हुई है।

**(ङ) काव्य और व्यवहार** – भाव पक्ष ही कवि को काव्य सृजन के लिए बाध्य करता है। जब तक बुद्धि में भावना का मिश्रण न होगा कविता में मौलिकता का गुण नहीं आ सकता। भावात्मक पक्ष ही हमें कर्म के प्रति प्रेरित करता है। भावों की अभिव्यक्ति ही कविता की प्राण होती है। जिस प्रकार अर्थशास्त्री का कर्म क्षेत्र अर्थ है ठीक उसी प्रकार दृश्य वर्णन की भावनात्मक अभिव्यक्ति कवि का कार्य है।

**(च) मनुष्यता की उच्च भूमि** – मनुष्य की चेष्टाओं, क्रियाकलापों का भावों से संबंध होता है। पशुता से मनुष्यता का निर्माण होता है। क्रोध प्रताड़ा को, हर्ष आनंद को, प्रेम भाव अपनेपन की ध्वनित करता है। मनुष्य की दृष्टि चराचर जगत के उपादानों में सौंदर्य को ढूंढ़ लेती है। कवि, वाणी द्वारा हम संसार के सुख–दुख का अनुमान लगा लेते हैं। इसमें मनुष्यता की उच्च भूमि की प्राप्ति होती है। कविता द्वारा हृदय प्रकृत दशा में आ जाता है। मनुष्य का संपूर्ण जगत के साथ तादात्म्य स्थापित हो ही जाता है।

**(ज) मनोरंजन** – कविता का मूल लक्ष्य लगत के मार्मिक पक्षों का चित्रण करना है, हृदय का सामंजस्य स्थापित करना है, कविता द्वारा मनोरंजन की पूर्ति करना है। मनोरंजन से ही काव्य की युगीन प्रासंगिकता सिद्ध होती है। मार्मिक पक्ष को पढ़कर पाठक भावविभोर हो जाता है। पंडित जगन्नाथ ने रमणीयता को ही काव्य माना है। सुनिये और कहिये का भाव कौतूहल के साथ मनोरंजन प्रदान करता है।

**(झ) सौंदर्य** – सौंदर्य वस्तु तथा दृष्टि दोनों में निहित होता है। भावात्मक पक्ष आंतरिक सौंदर्य बोध के परिचायक हैं जबकि प्राकृतिक उपादान बाह्य पक्ष की ओर संकेत करते हैं। दया, ममता, त्याग, वीरता मानव सौंदर्य के अंग हैं। कल्याण की भावना सौंदर्य बोध को व्यक्त करती है।

**(ञ) चमत्कार** – मनोरंजन से चमत्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। उक्ति के चमत्कार में वर्ण विन्यास की झांकी, शब्दों की प्रस्तुति वाक्य की वक्रता, अप्रस्तुत की प्रस्तुति, तथा दूरूह कल्पना का चित्रण देखने को मिलता है। स्वाभाविकता, मार्मिकता का भाव छिपा होता है। मार्मिक व्यंजना उक्ति द्वारा प्रभावकारी होती है।

**(ट) कविता की भाषा** – भाषा में अविधा, लक्षणा तथा व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों का प्रयोग मान्य होता है सात बजे गए का अर्थ अविधा और लक्षणा से ही निकल सकता है। कवि कर्म की सार्थकता लक्षणा में निहित होती है। भावों की अभिव्यक्ति सामान्य जन भाषा की अपेक्षा रखती है। शब्दों के प्रयोग को व्येजित करता है। हाथ पकड़ा और विवाह दोनों दो भावों के सूचक हैं। गुण बोधक शब्दों से भाषा में निखार आता है।

**(ठ) अलकार** – भाषा में सौंदर्य अलंकारों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। कथनी को स्पष्ट करने का ढंग है वर्णन शैली या कथन की पद्धति ही अलंकारों के स्वरूप को स्पष्ट करती है। अलंकार भावना के उत्कर्ष साधन के लिए आवश्यक है।

(ढ) कविता पर अत्याचार – शुक्ल जी का मानना है कि स्वार्थलिप्सा, आत्मप्रशंसा व स्तुति वर्णन द्वारा कविता के मार्ग को कुंठित कर दिया गया है। सच्चे सौंदर्य को महलों में देखना प्रारंभ कर दिया है जिससे घास फूंस की झोपड़ियाँ अनदेखी कर दी गई हैं। निमंत्रण, स्वागत, स्वान्तः सुखाय से कविता पर अत्याचार ध्वनित होता है।

(ण) कविता की आवश्यकता – कविता का स्वरूप प्रत्येक युग व जाति में पाया जाता है। इतिहास, विज्ञान, दर्शन के क्षेत्र भी कविता से अछूते नहीं रहे। मनुष्यता के समाप्त होते समय भी कविता ही याद आने लगती है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए कविता आवश्यक है। यही भावनात्मक स्तर मनुष्य और पशु में भेद को स्पष्ट करता है।

### 4.5.3 भाषा शैली :

रामचंद्र शुक्ल की भाषा में स्वाभाविकता, सरलता, प्रभावोत्पादकता, मार्मिकता जैसे गुणों का समावेश है। भाषागत सौंदर्य निम्नवत् है –

**(क) तत्सम शब्दों का प्रयोग** – प्रसून, प्रफुल्ल, मुक्तायास, स्फुरण, वक्रता, आनंदोत्सव, छन्दोबद्ध, निर्दिष्ट, प्रच्छन्न, नक्षण आदि।

**(ख) अंग्रेजी शब्द** – गोदाम, इंजिन, स्टेशन, मोटर, चिक आदि।

**(ग) संस्कृत शब्दों का प्रयोग व वर्ण विन्यास** – नाहि कर्वोरतिवृत्त मात्रनिर्वहिणात्मपद लाभः शुष्को वृक्षस्तिष्ठतत्पग्रे, तिरसतरूरिह, विलसति पुरतः स्वान्तः सुखाय है शोणित कलित कपाल।

**(घ) अलंकार** – भावना के उत्कर्ष साधन के लिए प्रयोग किए गए हैं। यमक, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है।

**(ङ) उर्दू, अरबी शब्दों का प्रयोग** – फौजदारी, मुकद्दमा, दस्तावेज, जरा, नुसखे, गलीचा, मतलब, कमर, मजमून बंदिश, खैर आदि।

**(च) अर्थ गंभीरता के शब्दों का प्रयोग** – गिरिधर, मुरारि, त्रिपुरारि, दीनबंधु, चक्रपाणि, मुरलीधर, सव्यसाची, चंद्रमुखी, नंदलाल।

शुक्ल जी ने भाषा को स्पष्ट करने, विचारों, भावों की प्रस्तुति के लिए लाक्षणिक, भावात्मक, वर्णनात्मक, समास, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं –

**(क) लाक्षणिकता युक्त शैली**

(i) बनन में बागन में बगरो बसंत है

(ii) चूनरि चारू चुई सी परै

(iii) मनहु उमगि अंग–अंग छवि छलकै

(iv) धन्य भूमि वनपंथ पहारा, जहं–जहं नाथ पांव तुम धारा।

(v) समय बीत गया।

**(ख) स्वाभाविक शैली** – मनुष्य माया के वशीभूत क्लेश, दुःख प्राप्त करता रहता है।

उदाहरण –

डासत ही गई बीति निसा सब कबहुं न नाथ! नींद भरि सोयों।

**(ग) वर्णनात्मक शैली** – सामान्य दृष्टि बोध से भी मार्मिक तथ्यों की प्रस्तुति की जाती है। वर्षा से हर्ष उल्लास, ग्रीष्म से शिथिलता, शिशर से दीनता, मधुराल से उमंग–ह्रास, प्रकाश से ललक भी देखी जा सकती है।

**(घ) काव्यात्मक/आलंकारिक शैली** – हवा के झौंकों से उसकी टहनियाँ और पत्ते हिल–हिलकर मानो बुला रहे हैं।

**(ङ) भावात्मक शैली** – वह सि प्रकार विकसित कमल रमणी के मुख मंडल आदि का सौंदर्य मन में लाती है उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंदर्य भी मन में जमाती है।

### 4.5.4 निष्कर्ष :

'कविता क्या है?' शुक्ल जी का सैद्धांतिक निबंध है, इस निबंध में कविता की परिभाषा, व्याख्या, जीवन से संबंध, उपयोगिता, आवश्यकता पर विचार व्यक्त किया गया है। साथ ही कविता के आवश्यक अंगों भाषा, अलंकार तथा सौंदर्य आदि का विवेचन भी किया गया है।

रसात्मकं वाक्यं काव्यम्, शब्दार्थौ सहितां काव्यम्, रमणीयार्थ–प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्– आदि परिभाषाओं में काव्य को स्पष्ट किया गया है। शुक्ल जी ने कविता को भवयोग तथा कर्मयोग से अविहित किया है। ह्रदय की मुक्तावस्था के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है उसे कविता नाम से पहचाना जाने लगा। कविता मनुष्य की स्वार्थलिप्सा से निकालकर लोक सामान्य भूमि पर ले जाती है।

मानव विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप मूलभाव सभ्यता के आवरण में छिपते चले गए। बौद्धिक क्लिष्टता चहुं ओद दिखाई देने लगी, जिसका प्रतिफल घृणा, द्वेष, प्रतिकार, ईर्ष्या के रूप में सामने आने लगा। धोखेबाजी ने अपना उग्र रूप धारण कर लिया। कविता भी इन दुष्प्रभावों से स्वयं को अछूता न रख सकी।

कविता का मानव की रसात्मक वृत्तियों के साथ सांसारिक घटना चक्र से भी संबंध होता है। श्रेष्ठ काव्य का जन्म मानव के इर्द–गिर्द तथा मनुष्येत्तर बाह्य सृष्टि से हो सका है। वाल्मीकि रामायण नर क्षेत्र का श्रेष्ठ उदाहरण है। कुमार संभव ब्राह्य सृष्टि का प्रमाण है। प्रकृति की मनोरम झांकी भी कविता को प्रेरणा प्रदान करती है। सच्चा कवि प्रकृति के कण–कण से अपना आत्मीय संबंध स्थापित करता है तथा अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति से अवगत कराता है।

पशु–पक्षी, सुख–दुख, हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, कृपा, क्रोध आदि मार्मिक अभिव्यक्ति के साधन हैं। पशु पक्षियों का जीवन दुष्कर हो गया है। जंगलों का कटान जारी है। इनको भी जीने का अधिकार है। फलस्वरूप सह्रदय कवि द्रवित होकर अभिव्यक्ति के लिए बाध्य होता है। व्यापार परिस्थितियाँ भी काव्य सृजन को प्रेरित करती हैं। कहीं नदी की कल–कल ध्वनि तो कहीं लोक गीत की मधुर तान मन को आकृष्ट कर लेती है। वैचारिक मंथन से अभिव्यक्ति में स्पष्टता झलकती है। मर्मस्पर्शी वर्णन इसी का प्रतिफल है।

काव्य द्वारा मानव व्यवहार भी दिखाई देता है। जटिल बुद्धि व्यापार के साथ कोमल भाव भंगिमा भी निहित होती है। करुणा, दया, भावों की दुनिया में कौटिल्य का कूटनीज्ञि पक्ष मुखरित नहीं होता। क्रोध, करुणा, प्रतिकार, भय, उत्कंठा से ही यह दोनों अपने लक्ष्य में सफल हुए हैं।

कविता मनुष्य की भाव भंगिमा का साकार रूप है। सभ्यता के विकास के साथ ज्ञान की भी वृद्धि हुई। मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा है। कवि का ह्रदय भी प्रकृति पशु–पक्षियों के चित्रण में डूबने लगा है। संपूर्ण जगत के साथ आत्मीय संबंध स्थापित हो गये। संसार के दुःख दुर्द आनंद–क्लेश उन्मुक्त भाव से अनुभव करना ही कवि कर्म की भावभूमि है। कविता ही मनुष्य को प्रकृत दशा में पहुंचाती है। उसके आंसुओं में जगत का दुःख व्यंजित है।

काव्य का जन्म भावना और कल्पना के मिश्रण से ही संभव हुआ। साहित्य की भावना ही वर्तमान की कल्पना बन गई है। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना आवश्यक है ठीक उसी प्रकार कवि के लिए कल्पना अनिवार्य है। विधायक और ग्राहक कल्पना के ही दो रूप हैं। पाश्चात्य साहित्य कल्पना की बेसाखी पर टिका है। कवि का संबंध विधायक कल्पना से होता है। ग्राहक कल्पना पाठक या श्रोता का अनिवार्य अंग है। शुक्ल जी का मानना है कि कविता द्वारा मनोरंजन होता है। इसका लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का चित्रण करना है। कविता हमारे एकांत का मिमत्र है। आनंद प्राप्ति का साधन है।

प्रकृति को सौंदर्य का भंडार कहा जाता है। रात में फैली दुग्धधवल चन्द्रमा की किरणें किसे शीतलता प्रदान नहीं करतीं। मानव मनोभावानुकूल प्रकृति को व्यंजित किया गया है। सौंदर्य का संबंध बाह्य पक्ष के साथ आंतरिक पक्ष से भी होता है। सूरदास की गोपियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शुक्ल जी का मानना है कि जिस प्रकार भक्त अपने आराध्य की उपासना में स्वयं को भूला देता है ठीक उसी प्रकार कवि भी मार्मिक तथ्यों की प्रस्तुति हेतु कविता को रचता है। सह्रदय पाठक जहाँ एक ओर सीता प्रसंग पर आंसू बहाने को बाध्य होता है वहीं रावण प्रसंग पर

दाँत भींच लेता है, भौंहें तान लेता है। शुभ पक्ष का चित्रण करना ही काव्य का सौंदर्य है।

काव्य में चमत्कार का होना स्वाभाविक माना जाता है। उक्ति के चमत्कार से आशय मनोरंजन की अभिवृद्धि करना है। वर्ण विन्यास, वचन वक्रता, अप्रस्तुत विधान, कल्पना, चमत्कार के अनिवार्य अंग हैं। शुक्ल जी ने भावानुमोदित व अन्तःवृत्तियों से संबंधित चमत्कारिक उक्ति को ही काव्य माना है। उक्ति का अद्‌भुत तथा लोकोत्तर होना आवश्यक है। कविता में सौंदर्य की अभिवृद्धि करने वाले उपकरणों में अलंकार सर्वोपरि हैं। सौंदर्य की सृष्टि करने में सहायक हैं। शुक्ल के अनुसार अलंकार प्रस्तुत भाव की भावना के उत्कर्ष साधन के लिए हैं।

कविता स्वतः उत्पन्न सहृदय व्यक्तियों की अभिव्यक्ति का प्रमाण है। लेकिन स्वार्थ लिप्सा व लोभ प्रेरित मनुष्यों ने प्रशंसा, चाटुकारिता युक्त काव्य–सृजन किया जिसे काव्य नहीं माना जा सकता। निमंत्रण, आगमन, प्रशंसा से युक्त काव्य काव्य न रह कर पहेली बन जाता है। सच्चे कवि सुख, ऐश्वर्य से कोसों दूर रहते हैं।

कविता युग की सार्वभौमिक अभिव्यक्ति होती है। आदि काल से उत्पन्न अनंतकाल तक अजस्त्र रूप में होती रहेगी। दर्शन, इतिहास, विज्ञान के बिना भी कविता लिखी जाती रहेगी। मानवीय प्रतिष्ठा हेतु शब्द सृजन आवश्यक माना जायेगा। जीवन जगत की यथार्थ अभिव्यक्ति काव्य द्वारा होती ही रहेगी।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

25. कविता क्या है?

26 काव्य का जन्म कैसे संभव है?

27. कविता में किस पक्ष की प्रधानता होती है?

28. उक्ति से क्या पैदा होता है?

29. लाक्षणिकता किस युग की विशेषता है?

30. मनोवैज्ञानिक निबंध किसने लिखे?

31. भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम क्या है?

32. किसके द्वारा संस्कारों की शुद्धि का साधन संभव है?

## 4.6 नाखून क्यों बढते हैं? (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व रचना प्रक्रिया शुरू की और स्वतंत्रता पश्चात् उसे प्रौढ़ता से युक्त किया। उनके लेखन में कालिदास का लालित्य, बाणभट्ट का समास गुंफन, रवीन्द्र की मानवीय भावना, कबीर के समान मनमौजी स्वभाव देखने को मिलता है। सांस्कृतिक बोध का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके निबंधों में विचार शृंखला देखने को मिलती है। उपन्यास, निबंधकार का गुण विद्यमान है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विषय की गंभीरता तथा मानवतावादी भावबोध मिलता है। उनके निबंध उनकी विद्वता गंभीर व्यक्तित्व, वैचारिकता को दर्शाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध के उत्स में जिज्ञासा मानव की मूलभूत आवश्यकता, ऐतिहासिक संदर्भ, संस्कृति की छटा, मानव व पशु का अंतर, भौतिकवादी भावना, चारित्रिक वर्णन को वर्णित करना है।

### 4.6.1 व्याख्या खंड :

नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़

रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के लखदंतावलंबी जीव हो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करने वाले और चरने वाले।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण ललित, निबंधकार, उपन्यासकार मानवतावादी लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं,' निबंध से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पक्तियों द्वारा लेखक अभिव्यक्त करता है कि वैज्ञानिक चकाचौंध से आकृष्ट होकर मानव ने विनाशकारी हथियारों का सहारा लेना शुरू कर दिा है। इससे मानव जाति का प्रगतिमार्ग अवरूद्ध हो गया है। द्विवेदी जी ने मानव की बदलती मानसिकता का वणर्न करते हुए लिखा है –

**व्याख्या :** जब मनुष्य आदि मानव था अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं पर आश्रित था। बाह्य आक्रमण से बचने के लिए उसके बड़े तथा नुकीले नाखून हथियार का काम करते थे। उससे मानवता कलंकित नहीं होती थी। उसके इन नाखूनों को देखकर पाशविक प्रवृत्ति का ज्ञान हो जाता था। भविष्य के प्रति चिंतित नहीं था उसका वर्तमान ही सब कुछ था। लेकिन मनुष्य ने जैसे–जैसे प्रगति की उसकी इच्छाएँ भी बलवती होती गई। फलस्वरूप अनेक विपत्तियों का सामना करना उसकी विवशता बन गई। इनको हल करने के लिए नाखूनों के स्थान पर विनाशकारी हथयारों, एटम बमों का सहारा लेना मजबूरी बन गया। आज वह विनाश के कगार पर खड़ा है कभी अपने अतीत को देखकर पश्चाताप करता है तो कभी भविष्य को देखकर उसकी आंखों से नींद उड़ जाती है। आज वह सभ्य तथा हथियारों से सुसज्जित होने पर भी संतुष्ट नहीं है। उसके नाखून आज भी उसी क्रम से बढ़ रहे हैं। विकास के पश्चात् भी पशुता, बर्बरता का प्रतीक नाखूनों में आज भी उसकी प्राचीन पशु हिंसक प्रवृत्ति विद्यमान है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव जब अपने अतीत पर दृष्टिपात करता है तो उसे दांत और नाखूनों के रूप में अपना आदि मानव अस्तित्व दिखाई देता है जिससे उसके पशुवत होने का अनुमान लगाया जा सकता है। खाने–पीने तथा सोने वाले जानवर की तरह मानव का स्वरूप है। सौंदर्य बोध की झांकी के दर्शन नहीं होते हैं। एटम बमों के रूप में मनुष्य के नाखून की झलक दिखाई देती है। हथियारों के जमा करने की प्रवृत्ति से पशुवत व्यवहार का बोध होता है। अमानवीय पशुता का प्रचलन वर्तमान युग का प्रचलन हो गया है।

**विशेष :**

मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति का वर्णन किया है।

सभ्यता के विकास के साथ ही उसकी सोच भी बदलनी होगी तभी आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो सकते हैं।

द्विवेदी का मानना है कि युद्ध पशुता का प्रतीक है तथा इससे मानवता कलंकित होती है।

वर्तमान युग में हथियारों के प्रति बढ़ता रूझान भविष्य के लिए खतरा पैदा करता है।

मानव के इतिहास की वर्तमान में प्रस्तुति की है।

बुद्धि, चेतना का धरातल ही पशु और मानव में अंतर स्पष्ट करता है।

द्विवेदी जी के गंभीर व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।

अविधा शब्दशक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

तुलनात्मक अध्ययन की छाप है।

मानव शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि–विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव चित्त की भांति मानव शरीर में भी बहुत सी अभ्यास जन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है वे वृत्तियाँ अनायास ही और शरीर के अनजान में भी अपने–आप काम करती हैं। नाखू का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं।

**संदर्भ :** यह गद्यावतरण उपन्यासकार, निबंधकार, मानवतावादी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** आदि मानव की प्रवृत्तियों का वर्तमान में शस्त्रों के रूप में पाया जाना चिंता का विषय है। नाखून बढ़ाने की सोच के मूल में पशुता ही दिखाई देती है जबकि नाखूनों के काटने से सभ्यता एवं संस्कृति का बोध होता है। मनुष्य ने एटम बमों तथा विनाशकारी हथियारों को एकत्र करना शुरू कर दिया है जिससे मानव सभ्यता पर विनाश के बादल मंडरा रहे हैं। मानवता की हिमायत करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि –

**व्याख्या :** मानव में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों में पाशविक लक्षणों का पाया जाना शुभ नहीं है। विकास के फलस्वरूप भी मानव का अतीत की प्रवृत्तियों से मोह भंग नहीं हुआ है। इसीलिए वह विनाशकारी कार्यों के प्रति उत्सुकता से बढ़ रहा है। समय के साथ मनुष्यों की सोच भी बदलनी होगी तभी हम विकास कर सकेंगे। शस्त्रों की होड़ से भविष्य भी सुरक्षित नहीं रह सकता। मानव का नाखूनों को बढ़ाना आदिम युग की आवश्यकता थी आज वह व्यर्थ सिद्ध हो रही है। बार–बार इन्हीं प्रवृत्तियों का मुखर होना पशुता का प्रतीक है। इन प्रवृत्तियों से उसे संबल प्रदान होता है इसीलिए उनके प्रति चिपका हुआ है। आदिम प्रवृत्तियों का स्वरूप वर्तमान में भी दिखाई देता है। द्विवेदी जी इनका क्रमशः उल्लेख करते हुए कहते हैं कि नाखून का बढ़ना उनमें से एक है। बालों का बढ़ना भी स्वाभाविक है, दांतों का पुनः निकल आना इसका प्रमाण है। एक समय था, युग की मांग थी मनुष्य का इनके बिना जीवन सुरक्षित नहीं था। समय के बदलने के साथ अब यह प्रवृत्तियाँ व्यर्थ सिद्ध हो गई हैं। नाखूनों की आवश्यकता नहीं है फिर भी बढ़ना जारी है। पहले बालों को शारीरिक सुरक्षा का साधन माना जाता था। लेकिन अब यह फैशन का प्रतीक बन गया है। अब मनुष्य को तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध हैं। दांतों का प्रयोग आदि युग में भोजन चबाने में किया जाता था अब छीलने, काटने के लिए मशीनें हैं। पलकों का गिरना व पुनः उठना इनमें से एक है। द्विवेदी जी का मानना है कि यह प्रवृत्तियाँ जन्मजात हैं इसीलिए स्वाभाविक रूप से आज भी मौजूद हैं। मानव का मन इनसे मुक्त नहीं हो सकता है। आज ये जीवन का अनिवार्य अंग बन गई हैं।

**विशेष :**

आदि मानव और वर्तमान मानव में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है।

मानव के लिए जन्मजात प्रवृत्तियों को छोड़ पाना जटिल होता है।

द्विवेदी जी के गवेषणात्मक अध्ययन की झलक है।

द्विवेदी जी की भविष्योन्मुखी जीवन–दृष्टि का चित्रण है।

मानवता के द्वारा ही पाशविक प्रवृत्तियों को दूर किया जा सकता है।

वैज्ञानिक उपलब्धि की भीड़ में छिपी विनाशकारी लक्षणों की ओर संकेत किया है।

प्रसाद गुण प्रयुक्त हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

इतिहास का अध्ययन वर्तमान को सुधारने व भविष्य को संभालने के लिए किया जाता है।

युद्ध की विभीषिका से जन धन के साथ संस्कृति व सभ्यता भी विलुप्त हो जाती है।

हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या पर नाना भावों और नाना पहलुओं से विचार किया गया है। हम कोई नौसिखिए नहीं हैं, जो रातों–रात अनजान जंगल में पहुंचकर अरक्षित छोड़ दिए गए हैं। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्जवल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खाद दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है पर मूल समस्याएँ बहु अधिक नहीं बदली हैं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, आलोचक, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में हथियारों की होड़ से चिंतित द्विवेदी जी मानवता संरक्षण के लिए हथियार को त्याज्य बताते हैं।

**व्याख्या :** द्विवेदी जी का मानना है कि इतिहास हमें भविष्य के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इतिहास हमारे अतीत का आईना होता है। मानव की पाश्विक प्रवृत्तियों के लक्षण प्राचीन ग्रंथों में देखने को मिलते हैं। सभ्यता एवं संस्कृति हमारे अतीत का प्रमाण होती है। हमारे दर्शन ग्रंथों में इसका प्रमाण उपलब्ध है। हमारा वैचारिक पक्ष सुदृढ़ है। विभिन्न समस्याओं पर अपने विवेक से अवगत कराया गया है। परिपक्वता के फलस्वरूप ही हम नौसिखिए नहीं कहलाते। हमारा अतीत भले ही पाश्विक रहा हो लेकिर हम लक्ष्य से भ्रमित नहीं हुए। हमने प्रश्नों के मूल में जाकर समस्या का हल ढूंढ निकाला है तथा संस्कारों से अपने जीवन को सुसंस्कृत कर लिया है। परंपरानुसार हम दिशा निर्देश के आधार पर लक्ष्य को प्राप्त कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ रहा है। हमारी मूल समस्याएँ भी हल होने लगी हैं। मानवता के लिए हमने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला। हम अपनी पाश्विक प्रवृत्तियों को छोड़ने को बाध्य हो रहे हैं।

**विशेष :**

भारतीय चिंतन पद्धति का वर्णन है।

मानवता का समर्थन करना द्विवेदी जी की विशेषत रही है।

इतिहास हमारे अतीत का संग्रहालय है जिससे हमें भविष्य के लिए दिशा निर्देश प्राप्त होता है।

संस्कारों की संख्या 16 होती है जो मनुष्य के जन्म से मृत्योपरांत तक चलते हैं।

संस्कारित व्यक्ति ही मानवता का समर्थक होता है।

एटम बमों के आविष्कार से मानवता का मार्ग अवरूद्ध हो गया है।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग हुई है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

परिस्थिति अनुरूप मनुष्य का बदलना युग–चेतना का द्योतक है।

परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सर्वस्व खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण कर लेते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते हैं। सो हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्व संचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

**संदर्भ :** प्रस्तुत अवतरण निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इस गद्यांश में द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव की आदिम प्रवृत्तियों से पशुता का बोध होता है उसका परित्याग करना मनुष्यता का सूचक है। मानव ने हथियारों का निर्माण करके प्रगति के मार्ग में अवरोध खड़ा कर दिया है। द्विवेदी जी ने मानवता की वकालत करते हुए कहा –

**व्याख्या :** मानव ने भौतिकता के साथ शस्त्रों की होड़ में स्वयं को धकेल दिया है। पारस्परिक स्पर्धा के फलस्वरूप अपने संस्कारों को भूल गया है। परंपरा को विस्मृत कर दिया है। नवीनता के मोह में अपनी विरासत को भुला देना न्यायोचित नहीं है। उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सब पुराने अच्छे नहीं होते और सब नए भी ग्रहणीय नहीं होते। अच्छाई बुराई का संबंध युग विशेष की अपेक्षा नहीं रखता। विवेकशीलता ही वह माध्यम है जिससे हम नूतन और पुरातन में सामंजस्य स्थापित कर ग्रहण योग्य स्वीकार कर सकते हैं। यह तर्क के आधार पर ही संभव है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मूढ़ व्यक्ति जिनके पास विवेक नहीं होता, अंधानुकरण के पोषक होते हैं वही लक्ष्य से भटक जाते हैं। लेखक इसके लिए परीक्षण तर्क को आधार मानकर निर्णय लेना उचित मानता है। परंपरा का मूल्यांकन करने के लिए मानव हित सर्वोपरि होना चाहिए। आलोचनात्मक विवेक द्वारा ही यह संभव हो सकता है।

**विशेष :**

द्विवेदी जी अंधानुकरण का त्याग कर नूतन दृष्टिकोण अपनाने पर बल देते हैं।

मानवतावादी चिंतन भारतीय दर्शन की विशेषता रही है।

वर्तमान समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए इतिहास का अध्ययन अपेक्षित है।

संस्कृत के प्रकांड विद्वान कालिदास का अभिमत विवेक सम्मत व न्याय संगत है।

विवेक रहित व्यक्ति ही दिग्भ्रमित होता है।

द्विवेदी जी हितकारी तथ्य की प्राप्ति के लिए विवेक दृष्टि आवश्यक मानते हैं।

प्रसाद गुण है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग की गई है।

शोध करने की प्रवृत्ति ही अनुसंधित्सा कहलाती है।

भारत वर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को समझने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य के लिए की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बांधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है। आहार–निद्रा आदि पशु–सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्‌भावित बंधन हैं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों द्वारा द्विवेदी जी पाश्विक प्रवृत्तियों का परित्याग करने, मानवता की स्थापना करने, शस्त्रों की होड़ को विनाशकारी मानने, सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करने तथा भारतीय चिंतन का दिग्दर्शन करने पर बल देते हुए कहते हैं –

**व्याख्या :** भारतीय संस्कृति में आत्मसात का गुण विशिष्टता का द्योतक है। यहाँ के ऋषियों ने मानव धर्म का समर्थन किया है। मानवीय पाश्विक प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अपने चिंतन से अवगत कराया है। द्विवेदी जी का मानना है कि भारतीय इतिहास वर्णों एवं जातियों का यथार्थ बिंब प्रस्तुत करता है। संयम व धैर्य का पालन कराया गया है। मानव अपने विवेक द्वाा निर्णय कर जीवनशैली बिताता है। स्वयं सांसारिक बंधनों में आबद्ध होने पर भी कभी सत्य व विवेक का दामन नहीं छोड़ता। द्विवेदी जी ने मानव और पशु में विभाजक रेखा को स्वीकारते हुए कहा है कि विवेकशीलता व चिंतन ही दोनों के भेद का आधार हैं। मानव स्वयं अनुशासित रहकर संवेदना एवं सहानुभूति को व्यक्त करता है। तप, त्याग, मानवता, श्रद्धा, संयम के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के आदर्शों से विमुख नहीं होता। उपरोक्त गुणों के फलस्वरूप ही वह मानवोचित व्यवहार करने को बाध्य है। यह मनुष्य का स्वयं की सोच का परिणाम है।

**विशेष :**

भारतीय संस्कृति एवं आदर्श का चित्रण है।

भारतीय दर्शन तथा चिंतन द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा की गई है।

बौद्धिक चिंतन ही मनुष्य को पशु से अलग करता है।

मनुष्य के लिए साहित्य, संगीत, कला की अनिवार्यता होती है।

प्रेम, श्रद्धा, त्याग संयम, तप, मनुष्यता भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं।

भारत धर्मात्माओं का देश है समय–समय पर इन धर्मात्माओं ने अपने उपदेशों से समाज को दिशा–निर्देश प्रदान किया है।

चार वर्ण माने जाते हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद गुण है।

तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

उसने कहा था बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को उठाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मतोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, स्व का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी । नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी रही।

**संदर्भ** : प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से लिया गया है।

**प्रसंग** : इन पंक्तियों द्वारा लेखक ने मानवता का समर्थन कर गांधीवादी विचारधारा का समर्थन किया है।

**व्याख्या** : द्विवेदी जी का मानना था कि मनुष्य को बाह्य जगत की अपेक्षा आंतरिक जगत का अवलोकन करना चाहिए क्योंकि आंतरिक नियंत्रण से बाह्य नियंत्रण स्वतः हो जाता है। मनुष्य को अपनी अभिव्यक्ति को तोलकर बोलना चाहिए। क्रोध, विनाश, हिंसा, द्वेष पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं। इन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। मन में प्रतिकार की भावना का परित्याग कर देना चाहिए। भ्रम के निवारण हेतु विवेक का पालन करना अपेक्षित है। गांधी जी की यही शिक्षाएँ थीं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करो। आराम करने से जीवन में शिथिलता आती है। घृणा का त्यागकर प्रेम को परिपक्व बनाना चाहिए, क्योंकि इससे मानवता बढ़ती है, संबंधों में प्रगाढ़ता आती है। अपने हृदय को शुद्ध रखना चाहिए। कर्म में लीन रहना चाहिए, अकर्मण्य रहना आलस्य को दर्शाता है। गांधी जी ने संसार में 'प्रेम' को सर्वोपरि माना है क्योंकि वह आंतरिक पक्ष की अनुभूति कराता है। उदंडता से पशुता झलकती है। गांधी जी की शिक्षाएं सर्वस्वीकार्य हैं, उनसे अलगाव या भिन्नता का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य जब किसी की जान लेने का प्रयत्न करता है तो उसमें पाशविक प्रवृत्ति हावी हो जाती है, यम माना जा सकता है कि अभी उसने पशुवत आचरण का त्याग नहीं किया है अर्थात् उसके नाखून के समान आदिम प्रवृत्तियाँ भी जीवित हैं।

**विशेष** :

गांधी जी के दर्शन की अभिव्यक्ति है।

वर्तमान में मनुष्यों में पशुवत आचरण का होना चिंता का विषय है।

प्रेम का क्षेत्र व्यापक है जिसकी सीमा में परिवार, समाज तथा राष्ट्रीय परिदृश्य समाहित हो जाता है।

कर्म करना प्राणीमात्र का धर्म है।

यह संसार कर्मस्थल है कर्मानुसार फल अवश्य प्राप्त होता है।

स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करने से सेवा का भाव व्यक्त होता है।

आराम करना प्रगति की दौड़ में स्वयं को अलग कर देना है।

आत्म संतोष सबसे बड़ा फल है।

वृद्ध जनों की शिक्षाएँ, उपदेश व्यावहारिकता से पूर्ण होती है।

अहिंसा ही परम धर्म है।

सत्य बोलो, झूठ बोलना पाप है।

अविधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद गुण का प्रयोग है।

संवाद शैली के दर्शन होते हैं।

भावानुकूल भाषा का चित्रण है।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को भी पा सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सभ्यता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात् वृद्धि का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना है, उस स्वनिर्धारित, आत्म बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों द्वारा मानवता का समर्थन कर चरित्र पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी कहते हैं –

**व्याख्या :** सफलता प्राप्त करना और मानव चरित्र की विशेषताएँ दो अलग–अलग पहलू हैं। वैज्ञानिक परिवेश में मनुष्य में शस्त्रों के प्रति आकर्षण बाह्य उपकरण कहलाता है। भौतिकता से मनुष्य के रहन–सहन का स्तर ऊंचा हुआ है। उसकी वास्तविक पग्रति तभी होगी ज बवह आंतरिक गुणों से सुसज्जित होगा। चारित्रिक विशेषताएँ सभी को स्वीकार्य होंगी। प्रेम, मित्रता, त्याग में मानवता के लक्षण समाहित हैं। स्वयं का परित्याग कर समाज कल्याण के लिए अर्पित कर देने से मानव चरित्र का उज्ज्वल पक्ष मुखरित होता है। लेकिन भौतिकता के आकर्षण से मनुष्य विमुख न होकर उसमें डूब गया है। धन एकत्र करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया है। लोक मंगल की भावना के बिना मानवता पल्लवित नहीं होती। जिस प्रकार नाखू बढ़ने से नैसर्गिक पक्ष का बोध होता है, ठीक उसी प्रकार उनको नियमित काटने से मानवीय चरित्र मुखरित होता है। मानव पक्ष का उज्ज्वल पहलू वह होता है जिसमें मनुष्य स्वयं कमल के समान निस्पृह रहकर निःस्वार्थ भाव से मानव सेवा में लीन रहता है।

**विशेष :**

मानवतावादी भावना का चित्रण है।

मानवीय गुणों के कारण ही मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है।

चरित्र की रक्षा बलपूर्वक करनी चाहिए।

प्रेम जीवन का वह पक्ष है जिसके बिना संबंधों की संकल्पना संभव नहीं है।

त्याग भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

अर्पण की भावना से चरित्र की विशेषता मुखरित होती है।

सफलता और मानवता में अंतर दृष्टव्य है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।

प्रसाद गुण है।

भाषा में संप्रेषण का गुण विद्यमान है।

### 4.6.2 विशेषताएँ :

ललित निबंधकार, सांस्कृतिक चेतना के समर्थक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में बाल जिज्ञासा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय की मांग, मानव व पशु में भिन्नता, वर्तमान युग में मनुष्य की छटपटाहट, सफलता व चरित्र में अंतर स्पष्ट किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) बाल मनोविज्ञान** – बच्चे स्वभाव से जितने नटखट होते हैं उतने ही जिज्ञासु भी होते हैं। तथ्य की तह में जाकर प्रश्नों का हल खोजना बालमनोविज्ञान की विशेषता है। इस निबंध में नाखून क्यों बढ़ते हैं? साधारण प्रश्न को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। नाखून का बढ़ना जिज्ञासा का द्योतक है।

**(ख) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि** – मनुष्य का इतिहास उसका लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। नाखून क्यों बढ़ते हैं। प्रश्न की भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। आदि मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, खान–पान, शत्रुओं से रक्षा व प्रतिकार के लिए नाखूनों को बढ़ाता था। यही दांत थे यही शस्त्र भी। पत्थर, हड्डी एवं दांतों से भी शस्त्रों का निर्माण कर जीवन को सुखी बनाने का यत्न किया गया। देवता और असुरों के मध्य युद्ध इसके प्रमाण हैं।

**(ग) विकास** – मानव विकास के साथ उसकी बुद्धि भी बदलती चली गई। भविष्य के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया। नाखूनधारी मानव ने एटम बमों का विकास कर लिया। लेकिन नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। नाखून रखने पर दंडित किया जाने लगा। उनको काटना सभ्य माना गया। लेकिन मनुष्य की बर्बरता कम नहीं हुई।

**(घ) सौंदर्य का साधन** – एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का अंग था। कामसूत्र इसका प्रमाण है। नाखूनों को विभिन्न आकारों त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुलाकार में काटना कला माना जाता था। गौण देश बड़े–बड़े नाखून पसंद करते थे जबकि दक्षिण के लोग छोटे नाखून रखते थे। मनुष्य की स्वाभाविक व जन्मजात प्रवृत्तियाँ खत्म नहीं हुई।

**(ङ) विवेक की आवश्यकता** – द्विवेदी जी का मानना है कि विवेक मनुष्य को वास्तविकता का बोध कराता है। प्राचीन को त्याज्य समझकर झुठलाया नहीं जा सकता और न भविष्य को मुख्य मानकर ग्रहण किया जा सकता है। विवेक द्वारा निर्णय ग्रहणीय हाता है। मूढ़ व्यक्ति पथ से विचलित होते हैं। हम परीक्षा द्वारा योग्य स्वीकार करें और अयोग्य का त्याग करें।

**(च) मानव और पशु में अंतर** – विभिन्न संस्कृतियों के समागम से समाज में विषमता पनपने लगी थी। समय–समय पर महान आत्माओं, ऋषियों ने मध्य वर्ग को खोज निकाला। सभी वर्णों व जातियों में समान आदर्श स्थापित किए। विवेक ही वह माध्यम है जिससे मनुष्य पशु से भिन्न है। उसमें संयम है। श्रद्धा, तप, त्याग जैसे गुणों का भंडार सुरक्षित है। मानवता प्रमुख धर्म बन गया। अहिंसा, सत्य, धर्म का पालन आवश्यक माना गया।

**(छ) सुख की खोज** – मनुष्य ने सुख के लिए अनेक मशीनों का आविष्कार किया, उत्पादन क्षमता विकसित की। उपकरणों को बनाया। लेकिन वृद्ध द्वारा बताए गए रास्ते में सुख के लक्षण दिखाई दिए। हिंसा, मिथ्या, क्रोध, लोक महत्ता, प्रेम की अनिवार्यता से मानवता की भावना बलवती होने लगी। वह पुनः आत्म मंथन को विवश हुआ।

यंत्रीकरण क विभीषिका से दो चार हुआ। अपनी गलती स्वीकार की। घृणा को पशुता माना गया। भावनाओं की कद्र करना मानव धर्म माना गया।

**(ज) सफलता व चरित्र में अंतर** – दोनों ही शब्द एक दूसरे के विरोधी हैं। मनुष्य बाह्य उपकरणों से सफलता तो प्राप्त कर सकता है लेकिन चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता। चरित्रांकन में प्रेम का गुण अनिवार्य है। त्याग की भावना का होना आवश्यक है। अर्पण की भावना का होना आवश्यक है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की सहज अंधता का सूचक है उनको काट देना, आत्मबंधन का फल है जिससे चरित्र का बोध होता है।

### 4.6.3 भाषा शैली :

द्विवेदी जी की भाषा में संस्कृत शब्दावली का वर्णन, उर्दू शब्दों की छटा, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, तत्सम शब्दावली की प्रधानता देखने को मिलती है। द्विवेदी जी का भाषागत सौंदर्य निम्नवत् है –

**(क) संस्कृत/तत्सम शब्दावली** – निःशेष, प्रवृत्ति, अस्त्र, वाक् निबोर्ध, निर्लज्ज

**(ख) अंग्रेजी शब्दावली** – एटम बम, इंडिपेंडेंस

**(ग) उर्दू/फारसी शब्दों का प्रयोग** – मजबूत, कम्बख्त, अनजान, निशानी, गलत शायद, जरूरत, बेहया, हाजिर।

द्विवेदी जी ने निबंध लेखन में वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, काव्यात्मक, तुलनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में वर्णित शैलियाँ उदाहरण सहित निम्नवत् हैं–

**(क) तुलनात्मक शैली** – सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है। मनुष्य की सहज प्रवृत्ति का परिणाम नाखून का बढ़ना है उनको काट–छांट देना चरितार्थता का द्योतक है।

**(ख)** चिंतन का पक्ष जहाँ वर्णित हो, विवेक सम्मत निर्णय निकल आए तो विश्लेषण शैली की झांकी दर्शनार्थ है।

**(ग) सूचना प्रधान वृतांतात्मक शैली** – बाहर नहीं भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मसंतुष्टि की बात सोचो, काम करने की बात सोचो।

**(घ) वर्णनात्मक शैली** – मनुष्य में कुछ जन्मजात स्वाभाविक वृत्तियाँ होती हैं जो अनायास अपना काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उनमें से एक है, केश बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है।

### 4.6.4 निष्कर्ष :

ललित निबंधकारों की परम्परा को विकसित करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में साधारण जिज्ञासा को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत कर मौलिकता का परिचय दिया गया है। निबंध का निष्कर्ष निम्नवत् है –

जिज्ञासा वह जन्मजात प्रवृत्ति है जो मनुष्य की चेतना को व्यक्त करती है। कभी–कभी साधारण सा प्रश्न मनुष्य को व्यथित कर देता है। उन्हीं में से जिज्ञासा बनी कि मनुष्य के नाखून क्यों बढ़ते हैं? एक इनको काट देने पर भी इनका पुनः उग आना कौतूहल का विषय है। बच्चों की जिज्ञासा को शांत करना माँ बाप का कर्त्तव्य हो जाता है।

संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है। ठीक उसी प्रकार मानव का भी अतीत, इतिहास की

दास्तां बयान करता है। जब मनुष्य असभ्य बनमानुष समान था उसे नाखूनों की आवश्यकता होती थी वे उसकी जीवन रक्षा का कार्य करते थे। उसके शत्रु को पछाड़ने में नाखूनों की आवश्यकता होती थी। धीरे–धीरे मनुष्य पत्थरों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगा। तत्पश्चात् हड्डियों से अस्त्रों का निर्माण किया। देवता, असुर युद्ध में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। तत्पश्चात् नाखून युक्त मनुष्य एटमबमों का भी आविष्कार करने लगा, लेकिन नाखूनों का बढ़ना इतिहास को व्यंजित कर रहा है।

एक समय नाखून रखना आवश्यकता थी किंतु कालांतर में नाखून रखना सभ्य नहीं माना जा रहा है। मां–बाप बच्चों को इन्हें काटने की सलाह देते हैं, क्योंकि उनकी जगह अब अस्त्रों ने ले ली है। मनुष्य की बर्बरता बढ़ती जा रही है; अर्थात् मनुष्य की पशुता खत्म होने का नाम नहीं ले रही। एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का प्रतीक बन गया था। वात्स्यायन के कामसूत्र में नाखून बढ़ाने की प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है। उनके काटने के अनेक प्रकार थे। कभी चौकोर काटे जाते थे, कभी वर्तुलाकार तो कभी चंद्राकार भी काटे जाते थे। मोम आदि द्वारा उन्हें रगड़कर सुंदर बनाया जाता था। गौण देश के मनुष्य बड़े–बड़े तथा दक्षिण के लोग छोटे नाखून पसंद करते थे।

नाखून का बढ़ना जन्मजात प्रवृत्ति है। आवश्यक न होते हुए भी वह अनायास बढ़ रहे हैं। शरीर में यह नाखूनों का बढ़ना जन्मजात व काटना मानव प्रवृत्ति की द्योतक है। हम किस ओर जा रहे हैं? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर। सामंजस्य स्थापित करना युग की मांग है। पुरातन से चिपके रहना हमें परंपरावादी कहलाने को विवश करता है। ठीक उसी प्रकार आधुनिकता को जीवन में रखना नयापन का बोध कराता है। इस संबंध में कालिदास के कथन को स्वीकार करना चाहिए। सभी अतीत त्याज्य नहीं है और सभी नवीन ग्रहण योग्य नहीं है। विवेक युक्त होकर आचरण करना ही श्रेष्ठ है। विवेक ही वह माध्यम है जिसके आधार पर मनुष्य और पशु में अंतर किया जा सकता है। श्रद्धा, तप, संयम त्याग, मानवीय गुण हैं। जाति समुदाय मनुष्य को विवाद में फंसाते हैं। गौतम का भी मानना था कि सुख–दुख में समभाव रखना ही मनुष्यता कहलाती है। अहिंसा, सत्य ही जीवन के अस्त्र हैं।

मनुष्य सुखी कैसे रहे? इसलिए मशीनों की खोज की, वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया। धन को एकत्र करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी लेकिन फिर भी मनुष्य को सुख नहीं मिला। मनुष्य को सुख भीतरी ओर देखने पर मिलेगा, हिंसा से दूर रहने को कहा गया, छूट को त्याज्य बताया। क्रोध, द्वेष से बचना बताया। प्रेम पूर्वक व्यवहार पर बल दिया गया। आत्मसंतोष को महत्त्व प्रदान किया गया। कर्म को महत्त्व प्रदान किया गया। प्रेम को सर्वोपरि माना गया।

मानव जीवन को खुशहाल बनाने के लिए अनेक आदर्शों की स्थापना की गई। नाखून बढ़ाना पशुता माना गया तथा काटना मनुष्यता का सूचक बन गया। वर्तमान युग में अस्त्र–शस्त्रों की भूख पशुता को दर्शाती है तथा इनकी प्रवृत्ति को रोकना मनुष्यता का प्रतीक है। घृणा पशुता कहलाई तथासंयम रखना, आदर करना धर्म कहलाया। अभ्यास और तप से मानवता को गौरवान्वित किया गया।

सफलता और चरित्र दोनों शब्द एक दूसरे के विपरीत हैं। मनुष्य अपने प्रयत्न से उपयोगी वस्तु को पा सकता है किंतु चारित्रिक गुणों से प्रेम, मित्रता, त्याग को शामिल किया जाता है। नाखून का स्वतः बढ़ना उस वृत्ति का परिणाम है जिससे सफलता प्राप्त की जा सकती है। उसको काट देने, निर्धारण करने में आत्मबंधन का फल है जिससे चरित्र का निर्माण होता है। नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें लेकिन पाशविक प्रवृत्ति नहीं बढ़ने दी जाए।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

33. मनुष्यों में किस आचरण का होना चिंता का विषय है?

34. मनुष्य किस गुण के कारण पशुओं से श्रेष्ठ है?

35. नाखून क्यों बढ़ते हैं? के लेखक का पूरा नाम क्या है?

36. नाखून काटना किसका प्रतीक है?

37. केश का बढ़ना कौन सी वृत्ति है?

38. सबके सुख–दुख, सहानुभूति को क्या कहते हैं?

39. नाखून किसका प्रतीक है?

40. नाखूनों को सुंदर कैसे बनाया जाता था?

## 4.7 पगडंडियों का जमाना (श्री हरिशंकर परसाई)

व्यंग्यात्मक लेखन की परंपरा को पल्लवित करने वाले, मार्क्सवादी, समाजवादी चिंतक प्रगतिवादी मूल्यों के समर्थक, लोक शैली के निर्माता हरिशंकर परसाई व्यंग्यात्मक लेखक हैं। यथार्थ की भूमि पर मूल्यों की क्षत होने की बेचैनी, विसंगतियों से उत्पन्न छटपटाहट, विशृंखलित समाज व्यवस्था के प्रति चिंतित हैं। शिकायत मुझे भी है, वैभव की फिसलन, सदाचार का ताबीज, विकलांग, श्रद्धा का दौर, तुलसीदास चंदन घिसे, हम एक उम्र के वाकिफ हैं, जाने पहचाने लोग आदि इनके प्रसिद्ध निबंध हैं।

पगडंडियों का जमाना निबंध में परसार्ठ जी ने सत्य मार्ग की प्रशंसा, समाज में व्याप्त अनैतिकता, स्वार्थलिप्सा, मनुष्य और देवता में अंतर, यथार्थ की झांकी, अतीत के प्रति आसक्ति आदि पक्षों को अभिव्यक्त किया है।

### 4.7.1 व्याख्या खंड :

मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव–रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे– 'वत्स तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल तुझे क्या चाहिए हमव र देने के मूढ़ में हैं। बोल हिंदी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूं या कहे तो किसी समीक्षक की तरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूं।'

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण व्यंग्य निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध 'पगडंडियों का जमाना' से उद्धृत है।

**प्रसंग :** इस गद्यांश में परसाई जी का मानना है कि मनुष्य जब सत्य मार्ग पर चल रहा होता है तो उसके मार्ग में अनेक विघ्न आते हैं तथा कभी परीक्षा भी होती है।

**व्याख्या :** परसाई जी का मानना है कि जब मनुष्य सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ईश्वरीय साधना में डूब जाता है तो मार्ग में आने वाली बाधाएँ उसकी परीक्षा करके लक्ष्य प्राप्ति के प्रति लालसा व्यक्त करती हैं। अर्थात् साधक की साधना बिना परीक्षा के पूर्ण नहीं होती। देवता मानव शरीर धारण करके उसके धैर्य की परीक्षा करते हैं। लक्ष्य के प्रति समर्पण भाव देखकर प्रसन्न होकर वर प्रदान करने को तैयार हो जाते हैं। नंबर बढ़वाने के लिए पास आए सज्जन के रूप में इंद्र और विष्णु का रूप विद्यमान है। लेखक सोचता है 'मेरे अनैतिक कार्य को मना करने से प्रसन्न और यह कहने को बाध्य होंगे कि हे वत्स तू परीक्षा में पास हो गया है। तेरी क्या इच्छा है? मनोवांछित फल की इच्छा प्रकट कर। हम चाहें तो तेरे नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा सकते हैं जिससे तुम भाषा लेखक के नाम से अमर हो जाओगे। ईमानदारी से खुश होकर हम तुम्हारे सामने समालोचक को भी दूसरे दर्जे का मान सकते हैं अर्थात् समालोचक भी ईमानदारी से प्रभावित होकर पानी भरने को विवश हो सकता है।'

**विशेष :**

मनुष्य का स्वभाव है कि वह स्वार्थ सिद्धि हेतु अनैतिक कार्य करने को बाध्य होता है।

परसाई जी ने गुरु की ईमानदारी का चित्रण किया है।

सत्यवादी हरिश्चंद्र की सत्य परीक्षा हेतु इंद्र ने ब्राह्मण रूप धारण किया था।

विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे– 'ड्यूटी' 'मूड़'।

मुहावरेदार भाषा पानी भरना के रूप में प्रयोग हुई है।

लेखक के अमर होने के पीछे लेखकों की मनोवृत्ति का वर्णन है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

अविधा शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण है।

सरल तथा प्रभावोत्पादक गुण है।

अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए नही ंतो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बे खटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है– एक की आत्मा अपने पास रहती है, और दूसरे की उससे दूर।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यांश हास्य व्यंग्य लेखक, निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वरा रचित 'पगडंडियों का जमाना' नाम निबंध से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों द्वारा परसाई जी बताते हैं कि जब सत्यवादी रूप धारण किया तो अतिरिक्त अंक देने की बाध्यता को नकारने पर अशोभनीय व्यवहार को सहन करना पड़ा। आत्मा ने ऐसी परिस्थिति में साहस बंधाया कि ईमानदारी का मार्ग कंटक युक्त है। समय के साथ चलना सीखो। आत्मा को फटकार लगाते हुए लेखक कहता है–

**व्याख्या :** कर्म के पीछे आत्मा की प्रेरणा विद्यमान रहती है। कर्म चाहे अच्छा हो या बुरा आत्मा द्वारा अस्तित्व में आता है। आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी के समान ही होना चाहिए जिसे जब आवश्यकता हो उपयोग में लाया जाए अन्यथा एकांत में रखी रहे। वर्तमान संदर्भ में जब आत्मा बुरे कार्यों को करने से रोकती है तो मनुष्य को कर्म के प्रति सचेत करती है। चिंतन पक्ष को सुदृढ़ आधार प्रदान कराती है। प्राचीन काल की कथाओं में राक्षसों की आत्मा किसी पहाड़ी पर तोते के रूप में होती थी। इसीलिए वे निर्द्वंद्व भाव से मनमाना कार्य करते थे। देवता और दानव में यही मौलिक अंतर व विभाजक रेखा है। देवता इसीलिए पूज्य हैं क्योंकि उनकी आत्मा उनके साथ रहकर अनुचित कार्य करने से रोकती है, जबकि राक्षसों की आत्मा उनसे कोसों दूर पिंजरे में कैद रहती है इसीलिए वे घिनौने व कुत्सित कर्म करने में संकोच नहीं करते।

**विशेष :**

देवता और राक्षस के बीच अंतर दिखाया गया है।

कर्म में आत्मा की प्रेरणा बलवती होती है।

आत्मा की तुलना फोल्डिंग कुर्सी से की है।

उर्दू व अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

व्यंग्यात्मक शैली है।

जन भाषा का प्रयोग हुआ है।

स्वार्थ पूर्ति के लिए गुरुओं पर अनुचित दबाव मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति को रेखांकित करता है।

समय के साथ चलना युग की मांग है।

अविधा शब्द शक्ति प्रयुक्त हुई है।

प्रसाद गुण है।

देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की चिट्ठी न हो तो कोई उसे दो कौड़ी का न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया हूँ। अब मैं बड़े खुले मन से नंबर बढ़वाता हूँ।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण प्रसिद्ध निबंधकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडंडियों का जमाना' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में लेखक वर्तमान समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार से त्रस्त है। मानवीय मूल्य तिरोहित हो गए हैं। लेखक चिंतन करता हुआ कहता है कि –

**व्याख्या :** मानव का चरित्र बदल गया है अपना यथार्थ कार्य करने के लिए मनुष्य को झूठी सिफारिश करनी पड़ रही है। झूठ एवं अनैतिकता का सहारा लेना पड़ रहा है। परिश्रमी और ईमानदार चक्की के नीचे पिस रहे हैं। लेखक का मानना है कि अगर सफलता प्राप्त करनी है तो सिफारिश की आवश्यकता है। युगीन समाज को देखकर लेखक की धारणा बदल गई है। जिस ईमानदारी का दामन उसने पकड़ा था वह धीरे–धीरे खिसकने लगा है। वह भी सामान्य व्यक्तियों की तरह ईमान भ्रष्ट करके उचित–अनुचित कार्य करने लगा है। स्थापित आदर्शों को त्याग दिया है और निश्चिंत होकर अनुचित ढंग से नंबर बढ़ाने लगा है।

**विशेष :**

समाज में बदलते मानदंडों का वर्णन है।

ईमानदारी, परिश्रम संस्कृति के अंग रह गए हैं।

मनुष्य संस्कृति से विमुख हो गया है अनुचित कार्य करने को उत्सुक है।

युगीन समाज का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग है।

शिक्षा मंदिर में व्याप्त सिफारिश, मूल्य पतन को देखा जा सकता है।

अंग्रेजी शब्द 'नंबर' का प्रयोग हुआ है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

युगीन समाज से दुःखी लेखक की मनःस्थिति का चित्रण है।

भ्रष्ट पदाधिकारियों के चरित्र का वर्णन किया गया है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति की छटा है।

इसमें अधिकांश दया के पात्र हैं ये बेहद परेशान और घबराए हुए लोग हैं। कोई चाहता है कि उसका लड़का पास हो जाए तो उससे नौकरी करा दें, जिससे परिवार की दुर्दशा कम हो। किसी को चिंता है कि लड़का फेल हो गया, तो और एक साल उसकी पढ़ाई का खर्च कैसे चलाऊंगा। कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाए, तो उसकी शादी करके बोझ हल्का करूँ। बहुत दुःखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें कुछ तो इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाए।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण हास्य व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में युगीन समाज की मनःस्थिति का अवलोकन करते हुए परसाई जी कहते हैं–

**व्याख्या :** परसाई जी व्यक्तियों के क्रियाकलापों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य अनुचित ढंग से सफलता अर्जित करते हैं उनमें आत्म विश्वास की कमी पाई जाती है। वे सदैव परेशान व घबराए रहते हैं। इनकी सफलता में इनका परिश्रम नहीं लगा है इसीलिए इनकी स्थिति दयनीय है। लगता है समाज में इसका प्रचलन हो गया है प्रत्येक व्यक्ति जुगाड़ में रहता है कि कैसे कार्य की सिद्धि हो जाए। कोई अपने नकारा पुत्र के अंक बढ़वाकर नौकरी की इच्छा लगाए बैठा है जिससे कि घर का बोझ हल्का हो जाए। कोई पुत्र के फेल होने से भयभीत है क्योंकि एक साल की पढ़ाई का खर्च उठाना दूभर है। कोई बेटी के अंक बढ़वाकर शादी कर देना फर्ज़ समझता है। ये सभी अनुचित कार्यों के लिए व्यथित हैं। इसीलिए चेहरे पर दयनीयता झलकती है। लेखक का मन करता है कि इनको देखकर कार्य करने से पूर्व इनसे मिलकर दिल का बोझ हल्का कर लिया जाए।

**विशेष :**

युगीन समाज की मनोवृत्ति का चित्रण है।

अनैतिक कार्यों के लिए मनुष्य की दयनीय स्थिति का दिग्दर्शन भी है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है।

समाज का यथार्थ बिंब चित्रित है।

चिंता ही वह कारण है जिससे मनुष्य क्रियाशील रहता है।

आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

अविधा शब्द शक्ति है।

प्रसाद गुण प्रयुक्त हुआ है।

लेखक का निजी अनुभव व्यक्त है।

लड़की के शिक्षित होने से मां–बा पके लिए उनके दिल का बोझ हल्का हो जाता है।

### 4.7.2 विशेषताएँ :

हास्य एवं व्यंग्य परक लेखक हरिशंकर परसाई ने 'पंगडंडियों का जमाना' निबंध में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मनुष्य और देवता में अंतर, समाज का बदलता नजरिया, स्वार्थ लिप्सा, अतीत के प्रति लगाव व यथार्थ बोध को व्यक्त किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) ईमानदारी की रक्षा** – मनुष्य के स्वभाव में ईमानदारी के प्रति निष्ठा का भाव अभिव्यक्त होता है। मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि करने के लिए दूसरे को सत्य के मार्ग से विचलित करना चाहता है। एक अध्यापक जो ईमानदार है उसके पास अनुचित कार्य करने हेतु दबाव बनाना चाहता है। ईमानदारी का भय उसको ऐसा करने की इजाजत नहीं देता। मना करने पर दुर्व्यवहार भी करता है।

**(ख) देवता और मनुष्य में अंतर** – अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जो समय पर उपयोग करने में काम आ सके। देवताओं की आत्मा उनके शरीर में रहती थी जबकि दानवों ने अपनी आत्मा दूर पहाड़ी पर तोते में कैद कर दी थी जिससे स्वछंद होकर वे मनमाना व्यवहार करते थे।

**(ग) बदलता दृष्टिकोण** – प्रगति व विकास के साथ मनुष्य का दृष्टिकोण भी बदल जाता है। राधेश्याम जो ईमानदार था उसे बिक्री का हिसाब रखने का दंड दफ्तर में रिश्वत देकर चुकाना पड़ता है। झूठ बिना रिश्वत के ही जीवित रहता है। देवता आदमी बनकर तो कभी आदमी देवता बनकर मनुष्य को ठगते थे। स्वार्थलिप्सा से अनुमान भी सटीक बैठने लगता है। जुलाई का समय दाखिले का और मार्च का समय पेपर के आऊट कराने का तथा मई जून का समय नंबर बढ़वाने का होता है अपना स्वार्थ पूर्ण कर दूसरे को नीचा भी दिखाया जाता था।

**(घ) यथार्थ की झांकी** – लेखक का मानना है कि इन प्रलोभनों, अनुचित कार्यों के मूल में यथार्थ भी झलकता है। सभी के चेहरों से बेचैनी झलकती है। दया के भूखे नज़र आते हैं। कोई लड़के को पास कराकर नौकरी के स्वप्न पालता है जिससे परिवार का बोझ हल्का हो जाए, कोई फेल हो जाने के भय से उत्पन्न अनावश्यक खर्च से बचना चाहता है। कोई लड़कियों को पढ़ाकर शादी करके मुक्त होना चाहता है। दीनता देखकर इनको गले से लगाने को मन विवश होता है।

**(ङ) स्वभाव में बदलाव** – पहले मनुष्य के कार्य कराने के तौर–तरीके अलग थे। उनके कहने में विनम्रता, शर्म, झिझक दिखाई पड़ती थी, लेकिन अब शर्म के स्थान पर निर्ममता आ गई है। झिझक के स्थान पर स्वाभिमान झलकने लगा है। पहले कहने का ढंग अलग था चोरी छिपे होता था अब खुली चिट्ठी आने लगी है। उसकी आंखों में चमक होती है अधिकार जमाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

**(च) अतीत के प्रति लगाव** – परसाई जी का मानना है कि दस वर्ष की प्रगति ने मानदंड भी बदल दिए हैं। अब अध्यापक को डर सताता है। सफलता के महल का सीधा रास्ता बंद हो गया है। चारों ओर दुर्गंध फैली हुई है। जो न्याया पथ के राही थे अपना सिर पीट रहे हैं और असत्य, कपटी, स्वार्थी अपना काम निकालने में सिद्धहस्त हो गए हैं। शर्म, संकोच हया की झाड़ियाँ सड़कों से समाप्त हो गई हैं। भ्रष्टाचार छल कपट, ईर्ष्या, प्रतिकार के कांटे उगने

लगे हैं। भविष्य का आदमी आम रास्ते को भूल जाएगा। क्योंकि सभ्यता की काट–छांट करने वाले समाप्त हो चले हैं।

### 4.7.3 भाषा शैली :

हरिशंकर परसाई जी ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सरल प्रभावकारी भाषा को आवश्यक माना। परसाई जी की भाषा की विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है –

**(क) संस्कृत/तत्सम शब्द** – प्रवर्त्तक, परीक्षा, वत्स, कपास, उज्ज्वल निर्लज्ज, संकोच।

**(ख) उर्दू/अरबी/फारसी शब्द**– ईमानदार, नाकामयाब, ईमान, फर्क, कोशिश, हिसाब, सिफारिश, बेईमानी, परेशान, मरम्मत, इंतजार, गलत, बाजार, बेवकूफ, बदबू।

**(ग) अंग्रेजी शब्द** – लिस्ट, मूड, फोल्डिंग, सिलेबस, प्रॉस्पेक्टस, पेपर, आउट, नंबर, पुलिस, प्रोफेसर, हिंट, ड्यूटी।

**(घ) मुहावरे** – आंखों में देखना, सेंध लगाना, पानी भरना, घूस देना

**(ङ) उपमा** – 1. बिजली नीग्रो सुंदरी के दांतों की तरह चमक रही हो।

2. फोल्डिंग कुर्सी की तरह।

परसाई जी ने व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, संवादात्मक, आलोचनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। पगडंडियों का जमाना निबंध में व्यक्त शैली का विवेचन निम्नवत् है –

**(क) संवादात्मक शैली** – वत्स तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल तुझे क्या चाहिए? हमव र देने के मूड में हैं।

**(ख) भावात्मक शैली** – मैं भी अब झूठा हिसाब रखूंगा। उसे घूस देकर सच्चा बनवा लिया करूंगा। सच्चाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूं। इतना महंगा ईमान अपनी हैसियत के बाहर है। इससे तो बेईमानी सस्ती पड़ेगी।

(ग) वर्णनात्मक शैली – अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए, नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया।

### 4.7.4 निष्कर्ष :

हरिशंकर परसाई व्यंग्यात्मक लेखन के लिए प्रख्यात हैं। उनकी रचनाएँ युग की विकृतियों का पर्दाफाश करती हैं। मनुष्यों को सोचने को विवश करती हैं। पगडंडियों का जमाना निबंध में परसाई जी ने मनुष्यों की स्वार्थ लिप्सा, चाटुकारिता का वर्णन किया है। इस निबंध का निष्कर्ष निम्नवत् है –

सत्य का मार्ग कांटों से भरा होता है। धैर्यवान ही कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर न्याय–सत्य के मार्ग पर बढ़ता जाता है। लेखक का मानना है कि ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ गुण है लेकिन इस मार्ग में अपनों से रूष्ट होना पड़ता है। लेखक ने वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। आज शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई न होना अनुचित कार्यों को बढ़ावा देता है। अध्यापक भी स्वार्थवश इस कार्य में सहयोग करने लगे हैं। लेखक ने जब ईमानदार बनने का प्रयत्न किया तो एक सज्जन नंबर बढ़वाने के लिए आये ''मैंने मन को काबू में करके प्रलोभन को ठुकरा दिया। वह महाशय नाराज होकर बुरा भला कहते हुए चले गये किंतु मैं इस प्रसंग को बहुत दिनों तक नहीं भूल सका।''

लेखक का मानना है कि आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सके। देवताओं की आत्मा इसी पृथ्वी पर जन सामान्य के बीच रहती थी जबकि दानवों की आत्मा पहाड़ी पर तोते में रहती थी। इसीलिए वे बेखटक मनमाना व्यवहार करते थे। समाज के साथ मनुष्य के दृष्टिकोण में भी

परिवर्तन आ गया। राधेश्याम को बिक्रीकर का हिसाब रखने पर भी रिश्वत देनी पड़ी। ईमानदारी की रक्षा भी रिश्वत से हो सकी। राधेश्याम के मन में विचार आया कि क्यों न झूठ को सिद्ध करने के लिए रिश्वत दूँ। ठीक इसी प्रकार एक स्त्री को जब नौकरी के लिए चरित्र प्रमाण की आवश्यकता पड़ी तो बड़े आदमी ने पहले कमरे में चलने को कहा। पहे देवता थे बाद में आदमी लेकिन अब आदमी पहले हैं देवता बाद में। ईमानदारी की रक्षा के लिए झूठ का प्रमाण पत्र देने की आवश्यकता से दृष्टिकोण की झलक मिलती है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने स्वार्थ के लिए गधे को बाप बना लेता है। मनुष्य का विवेक बात का अनुमान लगा लेता है। समय से आने वाले का लक्ष्य पता चल जाता है। जुलाई का महीना बच्चों के दाखिले का होता है। मार्च का महीना नंबर बढ़वाने का होता है। पहुँच हीन विद्यार्थियों का भविष्य अंधेरे में रहता है। अध्यापक इन दोनों पक्षों से अवगत होता है। वह कहने लगे कि 'भाई परीक्षा में बैठने वाला है मदद कीजिए।' परीक्षा का बुखार भी सताने वाला होता है। उन्होंने विनम्रता पूर्वक कहा –'आपके मित्र ने पर्चा बनवाया है कुछ हिंट दिलवा दें।' कोई पेपर आउट कराकर ईमान बिगाड़ना चाहता है। ईमानदारी से मित्र का सब कुछ नष्ट हो जाता है।

लेखक का मानना है कि पर्चा आउट करने वालों व नंबर बढ़वाने वालों को नकारा नहीं जा सकता। सभी के चेहरे से दयनीयता झलकती है। परेशान व घबराये हुए हैं। कोई लड़के के पास करवाने की जुगाड़ में है जिससे परिवार का खर्चा पानी चल सके। लड़के के फेल होने से एक वर्ष की पढ़ाई कैसे चलेगी? कोई लड़की के पास होने पर शादी से मुक्त होना चाहता है। अब यह आम प्रचलन हो गया है। पहले शरमाकर कहता था लेकिन अब बिना हिचक यह सब कहने लगे हैं।

मनुष्य अतीत को याद कर स्वप्नों की दुनिया में खो जाना चाहता है। प्रगति की नीड़ में भी अनिश्चितता के बादल हैं। जिस रास्ते पर कांटे, कटीली झाड़ियाँ थीं अब समाप्त हो गई हैं। चिकनी सड़कों पर लोग दौड़े जा रहे हैं, लेकिन आम आदमी इनसे दूर हटता जा रहा है।

**'अपनी प्रगति जांचिए'**

41. आत्मा को किसके समान होना चाहिए?

42. देव और दानव में क्या अंतर है?

43. मार्च का कहीना किसका प्रतीक है?

44. दया के पात्र कौन हैं?

## 4.8 अस्ति की पुकार हिमालय (श्री विद्यानिवास मिश्र)

समालोचक, भाषा संपादक, कोशकार, शिक्षक, शोध निर्देशक, निबंधकार श्री विद्यानिवास मिश्र हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध परंपरा के साहित्यकार हैं। उन्हें हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक तनय भी कहा जाता है। लोक जीवंतता, संस्कृति की छटा उनके निबंधों में वर्णित है। आपके निबंधों में भावात्मक पक्ष की प्रधानता देखने को मिलती है। विश्वव्यापी चेतना के फलस्वरूप मानवतावादी पक्ष मुखरित होता है। कदंब की फूली डाली वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, तमाल के झरोखे से लागो रंग हरी, गांव का मन, अस्मिता के लिए, तुम चंदन हम पानी उनके श्रेष्ठ निबंध हैं।

मिश्र जी अडिग आस्थावान और विश्वास के पोषक हैं। स्वार्थलिप्सा को मिटाने के लिए मिश्र जी ने स्नेहदीप प्रज्वलित कर समानता का उपदेश दिया। आपके निबंध ललित, वर्णनात्मक, भावात्मक रूप में सामने आते हैं। 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध में मिश्र जी का हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नूतन और पुरातन का सामंजस्य, महत्त्व, समाज की बदलती मानसिकता, शब्द की महत्ता, पौराणिक प्रसंगों का चित्रण करना मूल उद्देश्य रहा है।

### 4.8.1 व्याख्या खंड :

इस जीवन–प्रवाह में भाषा संस्कृति, समाज–चेतना ऐसा सभी कुछ शामिल है जिसका समष्टि चैतन्य से संबंध हो। राहुल के लिए जीवन भर हिमालय भूत नहीं, भविष्यत् नहीं, केवल अस्ति रहा, केवल हिमालय ही नहीं, हिमालय की प्रतिकृति, संस्कृत भाषा भी उनके लिए अस्ति रूप थी, उस भाषा के मूर्धन्य कवि कालिदास अस्ति रूप थे, हिमालय की छाया में बसी हुई सामान्य जनता शक्ति का अजस्र स्रोत थी।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, भारतीय संस्कृति के पोषक विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति का पुकार हिमालय' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में मिश्र जी हिमालय की महिमा का वर्णन करते हैं –

**व्याख्या :** मिश्र जी का संयोग घुमक्कड़ हरफनमौला राहुल सांस्कृत्यायन से हुआ। हिमालय के प्रति राहुल जी की अगाध निष्ठा थी, अपनी इसी भावना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'हे मिश्र! मुझे हिमालय अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है, उसका दीदार किए बिना मुझे मानसिक शांति प्राप्त नहीं होगी। मेरा मन हिमालय के आकर्षण मं खिंचा जा रहा है। मेरे मन को अन्यत्र कहीं आराम नहं मिलेगा।' मिश्र जी राहुल की इच्छा को जानकर चकित हुए और कहने लगे कि इतने नीरस आदमी का हिमालय से क्या संबंध है? हिमालय देवताओं का स्थल है अर्थात् वहाँ देवताओं की आत्मा निवास करती है। भगवात् गीता के अनुसार हिमालय भगवान वासुदेव का विश्राम स्थल है। हिमालय को निमंत्रण देने से पूर्व राहुल को आमंत्रित करना उचित होगा। हिमालय की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि हिमालय भी अपने भक्तों का ख्याल रखता है, उसकी इच्छाओं की पूर्ति करता है। राहुल भी हिमालय के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार हिमालय भारतीय संस्कृति का प्रमाण है, अभिन्न अंग है, जीवन का स्रोत है। मनुष्य की इस जीवन शैली में भाषा, संस्कृति, समाज सभी कुछ सम्मिलित हो जाता है। यह समष्टि ही व्यष्टि का विस्तार रूप है। राहुल अपनी इच्छा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हिमालय का अस्तित्व हमेशा से था, है और भविष्य में भी रहेगा। हिमालय के साथ मानव का परिवेश भी जुड़ा हुआ है, भाषा तथा संस्कृति भी जुड़ी हुई है। संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान कालिदास का नाम भी इससे जुड़ा हुआ है। हिमालय अपनी छत्रछाया में जन सामान्य को भी जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करता है। अर्थात् सामान्य मनुष्य इससे प्रेरणा को आत्मसात कर भविष्य के लिए कृतसंकल्प रहता है।

**विशेष :**

विद्यानिवास मिश्र जी की हिमालय के प्रति अगाध निष्ठा का वर्णन है।

राहुल जी ने हिमालय के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया है।

भौगोलिक दृष्टि से हिमालय भारत की बाह्य शत्रुओं से रक्षा करता है।

राहुल के अनुसार हिमालय भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है।

मानव जीवन भाषा, संस्कृति तथा समाज की सहभागिता से पूर्णता को प्राप्त होता है।

संस्कृत के कवियों में प्रकांड विद्वान नाटककार कालिदास का हिमालय से अभिन्न संबंध रहा है।

हिमालय निराश्रितों के लिए अदम्य शक्ति का संचार करता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत प्राचीन भाषा है।

वर्णनात्मक शैली अपनाई गई है।

अपने को अत्याधुनिक मानने वाले भी कुंडली दिखाते हैं, ग्रहों को प्रसन्न रखने के लिए रत्न धारण करते हैं और किसी मंदिर में जाएँ या न जाएँ पर हनुमान जी के यहाँ लड्डू चढ़ाने मंगलवार को जरूर पहुंच जाते हैं, हम गाहे–बेगाहे देवताओं का दरबार करते हैं। मनौती मानते हैं, इंडियन कल्चर ककी बात करते हैं। अशोक, कालिदास को भी कृतकृत्य करते रहते हैं, पर यह सब भुलावा है, छल है। हम देवताओं को अफसर या नेता या नेता और अफसर को देवता मानते हैं। हम थान पूजते हैं, माई का हो, बह्म का हो, तेलिया मसान का हो या अगियाकीर का हो, लंगोटी वाले का हो या नंगे का हो।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में मिश्र जी ने आधुनिक मनुष्य के दकियानूसी को वर्णित किया है।

**व्याख्या :** मिश्र जी का मानना है कि आधुनिकता से युक्त होने के लिए आवश्यक है मनुष्य की सोच भी बदलनी चाहिए। विवेक युक्त होकर निर्णय की क्षमता भी आवश्यक है। आधा तीतर और आधा बटेर की धारणा हानिकारक है इससे धोबी के कुत्ते की तरह स्थिति में रहना पड़ेगा। शिक्षित व आधुनिकता का स्वांग रचने वाले भी प्राचीन धारणाओं को त्याग नहीं पाते। अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु ज्योतिषी के चक्कर लगाते हैं। अपने भविष्य को मंगलमय बनाने के लिए रत्नों को धारण करते हैं। शक्ति की अकांक्षा लेकर हनुमान मंदिर में जाकर लड्डू चढ़ाते हैं। मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर है। आधुनिक कहलाते हैं। भारतीय संस्कृति की बात करते हैं पर कालिदास, अशोक को ही पैमाने से तौलते हैं। अपने लिए नेता की भी पूजा करने लगते हैं लगता है उनकी नजर में देवता और नेता एक ही हैं। अंधविश्वासों को जीवित रखते हैं। थान पूजते हैं चाहे वह किसी का हो उसकी पृष्ठभूमि में जाने का प्रयत्न नहीं करते। यही हमारी अंधता है।

**विशेष :**

मिश्र जी ने मनुष्यों की कथनी और करनी की भावना को स्पष्ट किया है।

शिक्षित व्यक्ति भी धार्मिक अंधता को नहीं त्याग पाता।

मानव मनोकामना की पूर्ति हेतु मंदिरों में जाकर पूजा–अर्चना भी करता है।

अपने देवताओं को भी स्वार्थ सिद्धि हेतु वर्गों में विभक्त कर दिया है।

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'इंडियन कल्चर।'

मिश्र जी ने वातावरण को साकार कर दिया है चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है।

भारत धर्म प्रधान देश है अनेक धर्मों के अनुयायी मिलते हैं फिर भी एकता के सूत्र में बंधे हैं।

वर्णनात्मक शैली अपनाई गई है।

अशोक को महान की उपाधि प्रदान की गई है।

नाटकों के लिए कालिदास की उपमाएँ संस्कृत साहित्य की महान धरोहर है।

भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता की बात करनी होगी तो वहाँ जगाधिराज हिमालय का नाम जरूर लेना चाहिए, दो चार सूखे अनधुले अनरंगे रस्मी अक्षत चढ़ाने ही होंगे या पहले के चढ़ाए अक्षत ही फिर चढ़ाएँ, कोई हर्ज नहीं। अगर हिंदुस्तान की जनता से त्याग के लिए अपी करनी होगी तो श्रीमदभगवद्गीता से उद्धरण देना ही होगा, उस थान के नाते भगवान कृष्ण को भी पान–सुपारी भेंट की जाएगी। अगर हिंदुस्तान की नारी को भुलावा देना होगा तो शक्ति की आराधना के बोल निकालने ही होंगे।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध से लिया गया है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों में मिश्र जी का मानना है कि एकता की रक्षा, त्याग तथा नारी की महिमा मंडित करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

**व्याख्या :** मिश्र जी कहते हैं कि भारत धर्म प्रधान देश है। धार्मिक भिन्नता भी एकता में परिवर्तित हो जाती है। राष्ट्रीय एकता के फलस्वरूप भारत विश्व फलक पर स्थित है। राष्ट्रीय एकता को परिपक्व बनाने में हिमालय का महान योगदान है। भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग 'त्याग' माना जाता है, यह त्याग ही भारत की विशिष्टता को रेखांकित करता है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में दिशा निर्देश मिलता है, जिस प्रकार भगवद्गीता कर्म की प्रेरणा प्रदान करती है, अन्याय व आतंक के खात्मे के लिए भगवान श्री कृष्ण को स्मरण किया जाता है। अगर नारी को शक्ति सम्पन्न बनाना होगा तो शक्ति की अराधना भी अपेक्षित होगी। भारतीय संस्कृति के इन प्रसंगों से नई पीढ़ी को दिशा–निर्देश मिलता है।

**विशेष :**

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

भौगोलिक दृष्टि से हिमालय हमारी सीमाओं की रक्षा करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म की शिक्षा पर बल दिया गया है।

अन्याय के खात्मे के लिए श्री कृष्ण को याद किया जाता है।

नारी को शक्ति संपन्न बनाने के लिए शक्ति की आराधना अपेक्षित है।

मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।

उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया है।

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

यह युग अर्थ प्रधान है रुपये की महिमा अपरंपार है, पर मैं समझता हूँ यह शब्द युग है, शुद्ध शब्द युग, शब्द जिससे अर्थ एकदम असंपृक्त हो, निरा केवली भूत शब्द हो, अर्थ के मोहपाश से युक्त हो, शब्द की महिमा के आगे किसी की महिमा नहीं। शब्द की महिमा न होती तो हिंदुस्तान के संपादक हिमालय जैसे अर्थशून्य विषय पर लेख लिखने के लिए इतना आग्रह क्यों करते। हिमालय एक शब्द है। हिंदुस्तान एक दूसरा शब्द है और हिंदुस्तान का हिमालय परस्थ लेखक एक तीसरा, पाठक एक चौथा। चारों शब्द हैं इसीलिए एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

**संदर्भ :** प्रस्तुत गद्यावतरण निबंधकार विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध से अवतरित है।

**प्रसंग :** इन पंक्तियों द्वारा मिश्र जी वर्तमान व्यवस्था के प्रति अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं।

**व्याख्या :** मिश्र जी कहते हैं कि वर्तमान युग में अर्थ की महत्ता है। जिसके पास धन है, दौलत है, वही सबसे बड़ा व्यक्ति है, सभी आदर्शों से युक्त हैं। मानवीय मूल्यों की महत्ता अर्थ पर आश्रित है। धनिक व्यक्ति में अवगुण भी गुणों में परिवर्तित हो जाते हैं। शब्द की महत्ता का वर्णन करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि इस संसार में शब्द की महत्ता है। शब्दों द्वारा ही भावात्मक अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। शब्द और अर्थ के संबंध बदल गए हैं। मानव अर्थ के आगोश में बैठ गया है। अगर शब्दों की दुनिया न होती, तो अभिव्यक्ति संभव नहीं होती। सहृदय की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द ही है। नीरस व शुष्क विषय भी शब्दों का आश्रय पाकर मनोरम और प्रभावोत्पादक हो जाता है। मिश्र जी वर्गीकरण द्वारा अपना आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हिमालय शब्द स्वयं में अर्थ की गंभीरता समेटे है। हिंदुस्तान भारत की विशेषताओं को चरितार्थ करता है। लेखक सहृदयता का द्योतक है वहीं पाठक वर्ग चौथा वर्ग कहलाता है। इनका पारस्परिक संबंध ही युगीन परिवेश को चरितार्थ करता है। शब्द ही वह माध्यम है जिसकी सीमा में वातावरण की सार्थक अभिव्यक्ति संभव है।

**विशेष :**

लेखक की दृष्टि में रुपये का महत्त्व होते हुए भी शब्द की महिमा अधिक है।

शब्दों के प्रयोग से ही हम व्यापक अर्थ तक पहुंच सकते हैं।

हिमालय एवं हिंदुस्तान शब्द अपने आप में विस्तृत अर्थ लिए हुए हैं।

हिमालय एवं हिंदुस्तान का प्रत्येक भारतीय के हृदय में विशेष महत्त्व है।

सहज, प्रभावमयी भाषा का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वर्णनात्मक एवं भावात्मक शैली है।

### 4.8.2 विशेषताएँ :

ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र जी ने 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध में हिमालय की ऐतिहासिक उपयोगिता, परंपरा का निर्वाह, राष्ट्रीय एकता, निस्पृह की भावना, शब्द की महत्ता तथा पौराणिक वृतांत द्वारा हिमालय का वर्णनात्मक शैली में वर्णन किया है। निबंध की विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) हिमालय का ऐतिहासिक महत्त्व** –मिश्र जी ने हिमालय की उपयोगिता का वर्णन विविध प्रसंगों से कराया है। गीता के अनुसार हिमालय भगवान् वासुदेव का शरण स्थल है। राहुल जी ने हिमालय को भारतीय संस्कृति का अभिनन अंग माना है जिसमें भाषा, संस्कृति तथा समाज की झांकी दिखाई दती है, जिसमें समष्टि का भाव निहित है। राहुल ने हिमालय को अतीत, वर्तमान तथा भविष्य से परे माना है। संस्कृत भाषा में हिमालय की महिमा का वर्णन किया गया है। कालिदास ने हिमालय पर अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को अवगत कराया है। कुमार संभव में हिमालय का वृतांत मिलता है।

**(ख) परंपरा के प्रति अनुरक्ति** – मनुष्य आधुनिक होने पर भी अतीत के प्रति अपना लगाव समाप्त नहीं कर पाते। आधुनिकता का दिखावा करने वाले भी कुंडली दिखाते हैं। ग्रहों का प्रभाव स्वीकार करते हैं। नास्तिक होने पर भी हनुमान की उपासना करना नहीं भूलते। इंडियन कल्चर की बात करने पर भी कालिदास अशोक को नहीं विस्मृत करते। राष्ट्रीय एकता, त्याग की भावना व नारी सशक्तिकरण के विषय भी हिमालय की गाथा में सन्निहित हैं।

**(ग) शब्द का महत्त्व** – आधुनिक युग में अर्थ की प्रधानता है। संबंधों की सफलता भी अर्थ पर टिकी है। शब्दों का जाल तोड़ पाना मुश्किल है। शब्दों द्वारा ही भावों की सार्थक अभिव्यक्ति संभव है। हिमालय की महिमा भी शब्दों द्वारा संभव है। हिमालय, हिंदुस्तान, लेखक और पाठक अलग–अलग वर्ग को दर्शाते हैं। शब्द द्वारा ही आपस में विश्वास, एकता समरसता का भाव जीवित है।

**(घ) पौराणिक महत्त्व** – हिमालय का पुराणों में वर्णन है। भगवान शिवजी का पार्वती के साथ विवाह था। दहेज के रूप में केवल सुहाग ही दिया था। बैल वाहन था, नसेड़ी पति था। जन सामान्य ने उसी सुहाग को जीवन में उपयोग किया। ऊंची पहाड़ियाँ, उज्ज्वल स्वरूप के रूप में हिमालय विराजमान है। हमने अपने से नीचे वालों को दुत्कारा है कभी स्नेह नहीं किया इसीलिए हिमालय निर्धनों की अति वेदना से काला पड़ गया है।

### 4.8.3 भाषा शैली :

विद्यानिवास मिश्र जी की भाषा में संस्कृत के प्रति लगाव, लोक संस्कृति, लोक जीवंतता का चित्रण मिलता है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा में स्वाभाविकता का गुण समाहित है। जनपदीय बोलियों के शब्दों से भाषा में प्रभावोत्पादकता का गुण पैदा किया है। मनोविनोद एवं कल्पना का सामंजस्य भी विद्यमान है। भाषागत विशेषताएँ निम्नवत् हैं –

**(क) संस्कृतनिष्ठ शब्दावली** – 'अस्ति की पुकार हिमालय' निबंध का प्रारंभ संस्कृत के श्लोक से होता है –

अस्त्युत्तरयां दिशि देवतात, हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य, स्थितः पृथव्या इव मानदण्डः।

गीता में भी कहा गया है – 'स्थावरणां हिमालयः।'

**(ख) उर्दू/अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग** – शायद, आखिर, बुलावा, ख्याल, जरूर, किस्मत, मेहरबानी, खुद, खैर, बदमजा, काफी, गम, जिन्दगी, कौशिश, तबीयत, नक्शे, दर्द, हैशियतदारी, स्याह।

**(ग) अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग** – इंडियन कल्चर।

**(घ) देशज शब्द** – गड़बड़, मनौती, झाग, गड़ही, धनपोखर, खसूसियत, छूअन।

विद्यानिवास मिश्र जी ने अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए भावात्मक, आलंकारिक, लाक्षणिक, वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। ललित निबंध भावात्मक शैली में लिखे। उनका चिंतन पक्ष विचारात्मक शैली का द्योतक है। अस्ति की पुकार हिमालय निबंध में प्रयुक्त शैलियों का वर्णन निम्नवत् है –

**(क) भावात्मक शैली** – हम वस्तुतः सिद्धावस्था में पहुंच चुके हैं इसीलिए हमें वर्तमान नहीं छूता, हमें केवल भूत पकड़ता है, या भविष्य खींचता है, वर्तमान हमें लेशमात्र भी नहीं प्रभावित करता। इसीलिए हम अस्ति की अटपटी भाषा समझ नहीं सकते।

**(ख) व्यंग्यात्मक शैली** – 'अपने को अत्याधुनिक कहने वाले भी कुंडली दिखाते हैं। गृहों को प्रसन्न करने के लिए रत्न धारण करते हैं और किसी मंदिर में जाएँ न जाएँ पर हनुमान जी के यहाँ लड्डू चढ़ाने मंगलवार को जरूर पहुँचते हैं, हम गाहे–बगाहे देवताओं का दरबार करते हैं, मनौती मानते हैं, इंडियन कल्चर की बात करते हैं अशोक, कालिदास को भी कृत कृत्य करते रहते हैं।

**(ग) विश्लेषणात्मक शैली** – यह कैसी वदेर की बातें करते हो, कहाँ काकुल, कहाँ काकर्त्ता? कुल के नाम पर अगणित तनाव हैं, सास–बहू के बीच, पिता–पुत्र के बीच, भाई–भाई के बीच ननद–भौजाई के बीच, भाई–बहन के बीच, देरानी जेठानी के बीच, और हर तनाव के बाद एक टूटन है।

### 4.8.4 निष्कर्ष :

संस्कृत साहित्य की रसचेतना एवं लोक चेतना की अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले विद्यानिवास मिश्र जी ललित निबंधकारों में अग्रणी हैं। विश्व व्यापक दृष्टि एवं सांस्कृतिक चेतना के साथ मानवतावादी बोध मिश्र जी के अभिन्न विषय रहे हैं। अस्ति की पुकार हिमालय निबंध मिश्र जी के मौलिक चिंतन का परिचायक है।

हिमालय भौगोलिक दृष्टि से भारत का प्रहरी है। अदम्य शक्ति का प्ररेणा स्रोत है। हिमालय के अवलोक से हतप्रद होना स्वाभाविक ही है। कालिदास इसके प्रमाण हैं। राहुल जी द्वारा हिमालय पुराणों, आत्मीयता के भाव व्यक्त करने से मिश्र जी चकित हुए। हिमालय का हमारे पुराणों, ग्रंथों में वर्णन मिलता है। हिमालय देवताओं की आत्मा है। भगवान वासुदेव का शरण स्थल है। हिमालय से पूर्व राहुल जी का भी स्मरण होना आवश्यक है क्योंकि राहुल जी की हिमालय में अगाध निष्ठा है। राहुल जी के अनुसार हिमालय भारतीय जीवन प्रवाह का स्रोत है जिसमें भाषा, संस्कृति, समाज, चेतना सम्मिलित हो जाता है। हिमालय न तो भूत का विषय है वह भविष्य का भी विषय नहीं है। संस्कृत भाषा भी हिमालय के समान भारतीय धरोहर है। हिमालय की बाहों के नीचे जीवन यापन करने वाली सामान्य जनता का स्रोत है। कुमार संभव में भी हिमालय का वृतांत है पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिमालय की पुकार धृमिल हो गई है। प्रदूषण है, संगीत की धमाचौकड़ी है।

मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर आ गया है। जो मनुष्य स्वयं को आधुनिक कहता है उसका दृष्टिकोण नवीनता से कोसों दूर है। कुंडली दिखाते हैं, ग्रहों से रक्षा का प्रयत्न करते हैं। मंदिर में जाकर हनुमान की अराधना करते हैं। इंडियन कल्चर का बखान करते हैं, लेकिन मनौती के लिए धाम पर जाने में नहीं हिचकते। अशोक, कालिदास को भी महत्त्व देते हैं। नेता को देवता मानकर पूजते हैं। कुर्सी को सलाम करने की प्रथा है।

भारत की राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा का बोध हिमालय की उपस्थिति को स्वीकार करता है। हिंदुस्तान में त्याग की बात करेंगे तो हमें श्रीमद्भगवद्गीता से उदाहरण देना होगा। राक्षस संहार के लिए श्री कृष्ण से भी भेंट करनी पड़ेगी। नारी को भुलावा देना है तो शक्ति की आराधना आवश्यक है। हिमालय को प्रहरी मानकर हमें आश्वस्त नहीं होना है।

मिश्र जी कहते हैं कि हम निष्क्रिय हो गये हैं। वर्तमान से मुंह मोड़ने लगे हैं। भविष्य के प्रति चिंतित नहीं है। इसलिए हमें हिमालय की भाषा भी नहीं सुनाई दे रही। अह ंके नशे में स्वयं को गौरवान्वित समझने लगे हैं। जातिगत वैमनस्य की खाई बड़ती जा रही है। सामंजस्य स्थापित करने से भटक गए हैं।

मनुष्य के मतभेद के फलस्वरूप सामंजस्य भी असामंजस्य में बदल गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का तात्पर्य बदल गया है। जीवन में ठहराव आ गया है। लगता है बर्फ का दबाव भारी है। देशी, विदेशी का भाव समाप्त हो गया है। युग अर्थ प्रधान हो गया है। मानवीय संबंध अर्थ पर टिके हैं। अर्थ की जगह शत्रु ने ले ली है। इंन्सान अर्थ के मोहपाश में जकड़े गए हैं। शब्दों के आगे किसी का कोई मूल्य नहीं है। हिमालय, हिंदुस्तान, लेखक और पाठक शब्दों के जाल में बंध गए हैं। शब्दों में एकता का भाव निहित है।

हिमालय का प्रसंग पौराणिक वृतांत से जुड़ा है। शिव–पार्वती के विवाह का गवाह है। दहेज के रूप में बावन हांडी सुहाग शेष रहा था। एकाकी परिवार था, कोई सास–ससुर, देवर जिठानी न थी। बैल, वाहन के रूप में साथ था। पार्वती ने अपने सुहाग को निचली जातियों में बांट दिया था। आज भी वही उपहार अकिंचन की महिलाओं के सिंदूर में सुशोभित है। उन्नत शिखर के रूप में हिमालय आज भी उपस्थित है। हिमालय का रंग स्याह भारत की नंगी जनता के कारण हो गया है। लेखक चिंतित है कि वह समय शायद अवश्य आयेगा जब पार्वती का यह सुहाग अभिजात्य वर्ग में भी उपस्थिति दर्ज करा देगा।

## 'अपनी प्रगति जांचिए'

45. कौन सा मार्ग कांटों भरा है?

46. देवताओं की आत्मा कहाँ रहती है?

47. राहुल सांकृत्यायन के लिये हिमालय का क्या महत्त्व है?

48. हिमालय किसका प्रतीक है?

49. मनुष्य को भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता कब नहीं होती?

50. हिमालय किसकी आत्मा है?

51. भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग कौन है?

52. आधुनिक युग में क्या प्रधान है?

53. भारत का प्रहरी किसे कहा जाता है?

54. हिमालय किसकी शरण स्थली है?

**4.9 सारांश :**

निबंध की विधा भारतेंदु युग से प्रारंभ होकर वर्तमान तक हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाती चली आ रही है। 'निबंध निकष' के निबंधों में 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध भावों, विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यमों को चरितार्थ करता है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, बौद्ध ग्रंथों, पुराण, भाषा के स्वरूप पर विवेचनात्मक दृष्टिकोण की झांकी मिलती है। रचना की उपयोगिता वर्णित विषय के साथ जन भाषा की प्रस्तुति पर निर्भर करती है। कवियों की 'उर्मिला विषयक उदासीनता' में द्विवेदी जी ने रामायण की स्त्री पात्र उर्मिला के प्रति उपेक्षित रवैये को पाठकों के समक्ष रखकर साहित्य मर्मज्ञों के स्वाभिमान को रेखांकित किया है। आपने कवि वाल्मीकि व तुलसीदास के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है स्वभाव से ही विषय का वर्णन कर कवियों ने अपने इरादों को व्यक्त किया है। इसी क्रम में आत्मव्यंजक शैली के जन्मदाता अध्यापक पूर्ण सिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं, उन्होंने 'मजदूरी और प्रेम' नामक अपने निबंध में श्रम की महत्ता व मानवतावाद पर बल दिया है। एक अन्य निबंध 'कविता क्या है?' निबंध आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सैद्धांतिक दृष्टिकोण का परिचायक है। कविता की परिभाषा, मार्मिक दृश्यों, भाषा, अलंकार उक्तियों द्वारा काव्य के विभिनन पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया गया है। काव्य द्वारा आनंद की पूर्ति होती है। तन्मयता व साधारण कारण की स्थिति का बोध श्रेष्ठ काव्य की ओर संकेत करते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मानव की जन्मजात स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन किया है, विभिन्न युगों में नाखूनों के बढ़ने की प्रवृत्तियों को प्रसंग सहित प्रस्तुत किया है। जिज्ञासा भाव को शांत करने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों से पाठकों को अवगत कराया है। 'पगडंडियों का जमाना' नामक निबंध मनुष्यों की स्वार्थपरता, चाटूकारिता और लिप्सा को दिखाता है। हरिशंकर परसाई द्वारा रचित यह निबंध उर्दू, अरबी, फारसी व संस्कृत के शब्दों से पूर्ण है। इसमें व्यंग्यात्मकता, वर्णनात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का प्रयोग हुआ है। अंतिम निबंध विद्यानिवास मिश्र का 'अस्ति की पुकार हिमालय' है जिसमें उन्होंने संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग करते हुए हिमालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नूतन और पुरातन का सामंजस्य, समाज की बदलती मानसिकता का वर्णन किया है। इस प्रकार हमें हिंदी निबंधों के विभिन्न स्वरूपों का दर्शन होता है। इन निबंधों के भावानात्मक, सैद्धांतिक, समीक्षात्मक, विचारात्मक, व्यंग्यात्मक आदि भाव दृष्टिगत हुए हैं।

## 4.10 मुख्य शब्दावली :

फुटही – फूटा

उम्दा – अच्छा

फिरके – वर्ग

प्रयाण – जाते

लषमण – लक्ष्मण

बनाम – बिना नाम वाला

मयस्सर – उपलब्ध

प्रसून – पुष्प

चिक – पर्दा

सिलेबस – पाठ्यक्रम

स्याह – काला

कूचक्र – बुरीचाल

छिद्रांवेषण – दोष ढूंढने की प्रवृत्ति

अस्ति – सत्ता

अर्पण – देना

कद्र – सम्मान

अवगत – परिचय

रसात्मक – रसयुक्त

अवलोकन – देखना

प्रहरी – रक्षक

तमसाच्छन्न – अंधकार से घिरा हुआ

क्रौंच – करांकुल नामक पक्षी

अन्योन्याश्रित – परस्पर का सहारा

प्रस्फुटन – फटना या खिलना

पुरोध – हित रखने वाला

## 4.11 'अपनी प्रगति जांचिए'

1. साहित्य समाज का दर्पण होता है।
2. वेद चार प्रकार के होते हैं।
3. जन समूह के ह्रदय का विकास साहित्य कहलाता है।
4. त्याग की भावना रामायण ग्रंथ में मिलती है।
5. आनंद के समय मुख कमल के समान होता है।
6. मनुष्य के ह्रदय का आदर्श साहित्य कहलाता है।
7. दुखी व्यक्ति की आवाज फुटही ढोल के समान होती है।
8. रामायण और महाभारत साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ माने गए हैं।
9. द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन किया।
10. पतिविहीन नारी की स्थिति जलविहीन सरिता के समान होती है।
11. कवियों का स्वभाव स्वच्छंद होता है।
12. उर्मिला वैदेही की सहेली एवं बहन थी।
13. भवभूति ने उर्मिला के बारे में वर्णन किया।
14. क्रौंच पक्षी का वध वाल्मीकि के लिए रामायण के सृजन का कारण बना।
15. उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी थी
16. राम का वनवास चौदह वर्ष का था।
17. लेखक ने किसान की तुलना व समानता ब्रह्मा से की है।
18. जाति–पाति की दीवारें प्रेम के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं।
19. मजदूरी और फकीरी में समानता के भाव मिलते हैं।
20. मशीनीकरण भुखमरी के लिये उत्तरदायी है।
21. भेड़ें सफेद ऊन वाली थीं।
22. मनुष्य के हाथ से बने कामों में पवित्र आत्मा की गंध आती है।
23. श्रम की महत्ता 'मजदूरी और प्रेम' नामक निबंध का उद्देश्य था।
24. हल चलाने वाले को 'हलधर' कहा जाता है।
25. जब व्यक्ति की वाणी अभिव्यक्ति से संपृक्त होकर मुखरित होती है, तो वह कविता कहलाती है।
26. काव्य का जन्म ह्रदय की सह्रदयता द्वारा संभव है।
27. ह्रदय पक्ष की प्रधानता होती है।

28. उक्ति से चमत्कार पैदा होता है।
29. लाक्षणिकता छायावादी युग की विशेषता है।
30. आचार्य रामचंद्र शुक्त ने मनोवैज्ञानिक निबंध लिखे।
31. कविता भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है।
32. कविता द्वारा संस्कारों की शुद्धि का साधन संभव है।
33. मनुष्य में पशुवत आचरण का होना चिंता का विषय है।
34. मनुष्य मानवीय गुणों के कारण पशुओं से श्रेष्ठ है।
35. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानव की सभ्यता का प्रतीक हैं।
36. केशों का बढ़ना दूसरी वृत्ति है।
37. सबके सुख–दुःख , सहानुभूति को मनुष्यता कहते हैं।
38. नाखून पशुता का प्रतीक है।
39. नाखूनों को मोम आदि रगड़कर सुंदर बनाया जाता था।
40. आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी के समान होना चाहिए।
41. देव की आत्मा उसके पास रहती है और दानव की उससे दूर।
42. मार्च का महीना पेपर आउट का होता है।
43. लड़का, लड़की दया के पात्र हैं।
44. सत्य का मार्ग कांटों भरा है।
45. देवताओं की आत्मा उनके पास रहती है।
46. उनके लिए हिमालय भूत, भविष्यत् न होकर केवल अस्ति रहा।
47. हिमालय राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।
48. सिद्धावस्था में पहुंचने पर भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता नहीं होती।
49. हिमालय देवात्मा है।
50. हिमालय भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।
51. आधुनिक युग में अर्थ प्रधान है।
52. हिमालय को भारत का प्रहरी कहा जाता है।
53. हिमालय भगवान वासुदेव की शरण स्थली है।

## 4.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

### लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. भगवान राम के गुणों का वर्णन कीजिए।
2. रामायण तथा महाभारत की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

4. द्विवेदी जी ने महर्षि वाल्मीकि की आलोचना क्यों की है?
5. हस्तकला की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
6. भट्ट जी ने अपने निबंध में कितनी शैलियों का प्रयोग किया है?
7. परिश्रम की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
8. 'कविता क्या है?' की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
9. मानव के मनोभावों के बारे में बताइए।
10. गांधीवादी विचारधारा के बारे में समझाइए।
11. मानवीय गुण किसे कहते हैं?
12. यथार्थ बोध पर टिप्पणी लिखिए।
13. आत्मा की उपमा किसे दी गई है?
14. पौराणिक दृष्टि से हिमालय का क्या महत्त्व है?
15. हिमालय किस प्रकार से भारतीय संस्कृति का प्रतीक है?

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–**

1. मानव व्यवहार युगीन परिस्थितियों पर निर्भर करता है। बालकृष्ण भट्ट की इन पंक्तियों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. आर्यों के वेदों व साहित्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. उर्मिला के प्रति कवियों की उदासीनता की लेखक ने किस प्रकार व्याख्या की है समझाइए।
4. द्विवेदी ने रामचरित मानस में उर्मिला की उपेक्षा को किस प्रकार वर्णित किया है।
5. किसान की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. मशीनीकरण के दुष्परिणामों का उल्लेख कीजिए।
7. कविता किसे कहते हैं? परिभाषित करते हुए समझाइये।
8. कविता में प्रभावोत्पादकता के गुण की व्याख्या कीजिए।
9. आदिमानव और वर्तमान मानव का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
10. 'मानवता सर्वोपरि है' सिद्ध कीजिए।
11. सत्य के मार्ग में कौन सी कठिनाइयाँ आती हैं विवेचना कीजिए।
12. लेखक किस प्रकार से भ्रष्टाचार से त्रस्त दिखता है?
13. शिक्षित व्यक्ति भी धार्मिक अंधता को क्यों नहीं त्याग पाता?

## 4.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नंदकिशोर नवल, *हिंदी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन।*
2. नंदकिशोर नवल, *कविता की मुक्ति, वीणा प्रकाशन।*
3. सं. सत्यप्रकाश मिश्र, विनोद तिवारी, *आचार्य रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध, लोक भारती प्रकाशन।*
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, निबंध यात्रा, *डॉ॰ कृष्णदेव इतिहास, शोध संस्थान, नई दिल्ली।*
5. हिंदी साहित्य में निबंध का विकास, *ओंकारनाथ शर्मा, अनुसंधान प्रकाशन,* कानपुर।